पूज्यवर बालब्रह्मचारी मुनिरत्न श्री १००८

श्रीअमृतसागरजी महाराज

का

संक्षिप्त जीवनचरित्र.
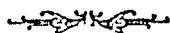
आपका जन्म विक्रम संवत् १९५० में सूरत नगरके समीपस्थ 'चलथान' ग्राममें जैन ओसवाल ज्ञातीय शा. आसाजीकी धर्मपत्नि चतुरबाई की कुक्षिसे हुआ था।

गृहस्थावस्थामें आपका नाम 'खीमचन्द' था। आपके दो भाई विद्यमान हैं। एक बडे और एक छोटे। उनमें बडेका नाम है हीराचंद और छोटेका प्रेमचंद।

आपके माता पिताका आपकी बाल्यावस्था ही में स्वर्गवास होगया था। तदनन्तर संवत् १९६१ में आप 'चलथान' से सूरत नगरके अन्तर्गत सगरामपुरामें आकर रहने लगे।

आपने व्यवहारिक अध्ययन गुजराती ७ वीं तथा अंग्रेजी ३ री - ४ थी कक्षा तक किया था। तत्पश्चात् वयोवृद्ध शान्तमूर्ति मुनिरत्न श्री सिद्धिविजयजी महाराजके सदुपदेशसे आपको धर्मराग उत्पन्न होगया। बाल्यावस्थामें भी आपने जमीकन्दका त्याग इत्यादि बहुतसे नियम स्वीकार किये थे, और विधिपूर्वक श्री नवपदजीके तपका आराधन तथा उपधान-तप करके

मास अपने महाराजसे अलग नहीं किया। आपका चारित्र निष्कलंक था। आपमें क्षमा, निःस्पृहता, धैर्य आदि अनेक गुण भी विद्यमान थे।

आपके दो शिष्य हैं, मुनि श्रीमुक्तिसागरजी व मंगलसागरजी; तथा एक प्रशिष्य भी है जिनका नाम मुनि श्रीमहिमासागरजी है।

आपने संवत् १९८४ का चातुर्मास गुरुजीके साथ उदयपुर (मेवाड) में किया था। वहां आपको आश्विन कृष्णादशमीसे सतत् ज्वर-रोगने आ घेरा। उसमें आपको असीम कष्ट हुआ, परन्तु आपका धैर्य अलौकिक था। कष्टोंसे आप क्षण भर भी व्याकुल न हुए। समता पूर्वक सब सहन करते रहे। आपकी असम सहिष्णुताको देखकर उदयपुरका श्रावक संघ ही नहीं, किन्तु श्रमण-श्रमणी संघ भी आश्चर्यान्वित होगया था। औषधि परिचर्या करनेवाले भी आपके असाधारण धैर्य की अनुमोदना करते थे। मार्गशीर्ष शुक्ल-पक्षमें रोग-शान्ति होजाने पर आपने दीवाली के मंदिर और समीना पार्श्वनाथजीकी यात्रा भी की। निदान पौष शुक्ला प्रतिपदासे आपको पुनः ऐसे रोगने घेरा कि पौषशुक्ला पंचमीके दिन वह आपके प्राण ही हर ले गया।

सायंकालको प्रतिक्रमणका समय था। आप बैठे हुए थे। आपके समीप ही आचार्य महाराजजी विराजमान थे। आपने

॥ नमो जिनाय ॥

परमपूज्य आगमोद्धारक आचार्यवर्य
श्री सागरानन्द सूरीश्वरजी महाराज के प्रशिष्यरत्न

बालब्रह्मचारी श्री अमृतसागरजी महाराज

का

गुणस्तुत्यष्टकम्
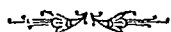
(रथोद्धता)

वैक्रमे (१९५०) खविशिखांकभूमिते,
वत्सरे च 'चलथान' पुर्यभूत्।
यस्य जन्म 'चतुरा' प्रसूदरात्,
तं नमाम्यमृतसागरं मुनिम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिनका जन्म विक्रम संवत् १९५० में चलथान नामक ग्राममें माता 'चतुरा' के उदरसे हुआ था, उन श्रीअमृतसागर मुनिजीकी मैं स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

यः सदा श्रमण सेवनापरः,
कुत्सितव्यसनसंगवर्जितः।
ब्रह्मचार्यपिच यः शिशुत्वत—
स्तं नमाम्यमृतसागरं मुनिम् ॥ २ ॥

अर्थ—जो बालपनसे सदैव मुनिसेवा करनेवाले निर्दोष सात-व्यसनोंके संगसे रहित और ब्रह्मचारी भी थे, उन श्रीअमृतसागर मुनिजीका मैं स्मरण करता हूं ॥ २ ॥

शैशवे विधियुतं चतुर्दशी—
पौषधं नवपदाभिधं तपः
यो व्यधाच्च सततं जिनार्चनां,
तं नमाम्यमृतसागरं मुनिम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जो बाल्यावस्थामें विधिपूर्वक चतुर्दशीका पौषध नवपद ओलीजीकी तपस्या और नित्य प्रति जिनपूजा किया करते थे, उन श्रीअमृतसागर मुनिजीको मैं नमस्कार करता हूं।

योऽग्रहीत् परमपूज्यसागरा—
नंदसूरिचरणे मुनिव्रतम् ।
निर्गुणत्वमवगम्य संसृते—
स्तं नमाम्यमृतसागरं मुनिम् ॥ ४ ॥

अर्थ—संसारका निर्गुणत्व (असारता) समझ कर जिन्होंने परमपूज्य श्रीसागरानंद सूरीश्वरजीके चरणमें मुनिव्रत स्वीकार किया, उन श्रीअमृतसागर मुनिजीको मैं नमन करता हूं ॥४॥

योऽध्युवास चरणस्थिरत्वकृज्,
जीवनावधि गुरोः कुलं मुदा ।
योऽनिशं च गुरुशासने स्थित—
स्तं नमाम्यमृतसागरं मुनिम् ॥ ५ ॥

अर्थ—चारित्र (संयम) को स्थिर करनेवाले गुरुकुलमें जीवनपर्यंत जिन्होंनें निवास किया और जो सदैव गुरूजीकी आज्ञामें स्थिर रहे, उन श्री अमृतसागर मुनिजी को मैं नमन करता हूं ॥ ५ ॥

यः सुधीः पठनपाठनोद्यतः,
प्रत्युपेक्षणमुखक्रियापरः ।
यः क्षमादिगुणमण्डितस्तथा
तं नमाम्यमृतसागरं मुनिम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जो सुबुद्धिवन्त, पठनपाठनमें उद्यमशील और प्रतिलेखनादि क्रियामें तत्पर थे तथा जो क्षमा आदि गुणोंसे शोभित थे उन श्रीअमृतसागर मुनिजीको मैं नमन करता हूं ॥

येन यौवनवयस्युदारया,
श्रद्धयाभ्युपगतं व्रतं यया ।
श्रद्धया किल तयैव पालितं,
तं नमाम्यमृतसागरं मुनिम् ॥ ७ ॥

अर्थ—जिन्होंनें युवावस्थामें जिस उदार श्रद्धासे संयम स्वीकार किया था उसी ही श्रद्धासे (संयमका) पालन किया, उन श्रीअमृतसागर मुनिजीको नमन करता हूं ॥ ७ ॥

श्रीजिनस्तुतिसंग्रहकी अनुक्रमणिका.

नंबर	विषयानुक्रम.	पृष्ठां

देशनासंग्रहकी अनुक्रमणिका.

* वन्दे जिनवरम्. *

चतुर्विंशति जिनस्तुतिदेशनासंग्रह

स्तुति संग्रह.

श्रीऋषभदेवभगवानके जन्म समय इन्द्रमहाराजद्वारा की हुई स्तुति।
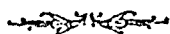
हे तीर्थनाथ ! हे जगतको सनाथ करनेवाले, हे कृपारससागर, हे नाभिनन्दन, आपको नमस्कार करता हूं। हे नाथ ! नन्दनादिक तीन आरामोंसे जैसे मेरुपर्वत शोभता है वैसे ही मतिप्रभृति त्रिज्ञानयुक्त उत्पन्न होनेसे आप शोभते हो। हे देव ! आज यह भरतक्षेत्र स्वर्गसे भी विशेष शोभायमान है, क्योंकि त्रैलोक्यके मुकुटरत्न समान आपने उसे अलंकृत किया है। हे जगन्नाथ ! जन्मकल्याणकमहोत्सवसे पवित्र हुआ आजका शुभ दिवस यावज्जीव आपही के समान वन्दन करनेके योग्य है। आपके इस जन्मपर्वसे नारकियोंको भी सुख हुआ है। क्योंकि अर्हन्तका उदय किसके संतापको हरनेवाला नहीं होता ? इस जम्बूद्वीपके अन्तर्गत भरत-

क्षेत्रमें निधानकी भांति धर्म नष्ट होगया है, उसे आपकी आज्ञारूपी बीजसे पुनः प्रकाशित करो। हे भगवन् ! आपके चरणोंको प्राप्त करके अब संसार–सागरको कौन नहीं पार करेगा ?, क्योंकि नावके योगसे लोहा भी समुद्र पार कर जाता है। हे भगवन् ! वृक्षहीन देशमें जैसे कल्पवृक्ष उत्पन्न होता है, और मरुदेशमें जैसे नदीका प्रवाह होता है, वैसे ही लोगोंके पुण्यसे आपने इस भरतक्षेत्रमें अवतार लिया है।

श्रीऋषभदेवजीकी दीक्षाके समय इन्द्रद्वारा की हुई स्तुति।

हे प्रभो ! आपके यथार्थगुणोंका वर्णन करनेको हम असमर्थ हैं, तथापि हम स्तुति करते हैं; क्योंकि आपके प्रभाव से हमारी बुद्धिका विस्तार होता है। हे स्वामिन् ! त्रस और स्थावर जन्तुओंकी हिंसाका परिहार करनेसे अभयदान देने वाली दानशालारूप आपको हम नमस्कार करते हैं। सर्वथा मृषावादका परित्याग करनेसे हितकारी, सत्य और प्रिय वचनरूपी सुधारसके समुद्र समान आपको हम नमस्कार करते हैं। हे भगवन्! अदत्तादानके त्यागरूपी रुद्ध हुए मार्ग के [illegible] रूप आपको हम नमस्कार करते हैं। हे प्रभो! कामदेवरूपी अन्धकारके नाशक और अखंडित ब्रह्मचर्य

र्षा महातेजस्वी रविके समान आपको हम नमस्कार करते हैं। पृथ्वी आदि सर्वजातिके परिग्रहको एकही साथ तृणवत् त्याग करनेवाले निर्लोभतारूप आत्मावाले आपको हम नमस्कार करते हैं। पंचमहाव्रतका भार उठानेमें वृषभ समान और संसार-सिन्धुको तरनेमें कच्छप समान आप महात्माको हम नमस्कार करते हैं। हे आदिनाथ! मानो पंचमहाव्रतोंकी पांच सहोदरा हों ऐसी पंच समितियोंको धारण करनेवाले आपको हम नमस्कार करते हैं। अन्तरात्मा-हीमें जुटे हुए मनवाले वचनसंगुप्तिसे सुशोभित और शरीरकी संपूर्ण चेष्टाओंसे निवृत्त ऐसे त्रिगुप्तिधारक आपको हम नमस्कार करते हैं.

—=—

प्रभुके केवलज्ञानके समय इन्द्रद्वारा की हुई स्तुति.

हे जगत्पते! जैसे रत्नोंसे रत्नाकर शोभता है वैसेही आप अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य और आनन्दसे शोभते हो। हे देव! इस भरतक्षेत्रमें बहुत कालसे नष्टप्राय: धर्मरूप वृक्षको पुनः उत्पन्न करनेमें आप बीज समान हो। तथा हे प्रभो! आपके माहात्म्यकी कोई अवधि नहीं, कारण कि अपने २ स्थानमें रहनेवाले अनुत्तरविमानके देवताओंके सन्देहको आप जानते हो और उक्त संदेहका निवारण भी करते हो। महान् समृद्धि-शाली और कान्तिसे प्रकाशमान इन समस्त देवताओंका जो

क्षेत्रमें मिथ्यात्वकी भांति धर्म नष्ट होगया है, उस धर्मको आज्ञारूपी दीपसे पुनः प्रकाशित करो। हे भगवन्! आपके चरणोंको प्राप्त करके इस संसार-सागरको कौन नहीं पार करेगा ?, क्योंकि नावके योगसे लोहा भी समुद्र पार कर जाता है। हे भगवन्! वृक्षहीन देशमें जैसे कल्पवृक्ष उत्पन्न होता है, और मरुदेशमें जैसे नदीका प्रवाह होता है, वैसे ही लोगोंके पुण्यसे आपने इस भरतक्षेत्रमें अवतार लिया है।

श्रीऋषभदेवजीकी दीक्षाके समय इन्द्रद्वारा की हुई स्तुति।

हे प्रभो ! आपके यथार्थगुणोंका वर्णन करनेको हम असमर्थ हैं, तथापि हम स्तुति करते हैं; क्योंकि आपके प्रभाव-से हमारी बुद्धिका विस्तार होता है। हे स्वामिन् ! त्रस और स्थावर जन्तुओंकी हिंसाका परिहार करनेसे अभयदान देने वाली दानशालारूप आपको हम नमस्कार करते हैं। सर्वथा मृषावादका परित्याग करनेसे हितकारी, सत्य और प्रिय वचनरूपी सुधारसके समुद्र समान आपको हम नमस्कार करते हैं। हे भगवन्! अदत्तादानके त्यागरूपी रुद्ध हुए मार्ग-में अगुए हुए आपको हम नमस्कार करते हैं। हे प्रभो ! कामदेवरूपी अन्धकारके नाशक और अखंडित ब्रह्मचर्य-

रूपी महातेजस्वी सूर्य समान आपको हम नमस्कार करते हैं। पृथ्वी आदि सर्वजातिके परिग्रहको एकही साथ तृणवत् त्याग करनेवाले निर्लोभतारूप आत्मावाले आपको हम नमस्कार करते हैं। पंचमहाव्रतका भार उठानेमें वृषभ समान और संसार-सिन्धुको तैरनेमें कच्छप समान आप महात्माको हम नमस्कार करते हैं। हे आदिनाथ! मानो पंचमहाव्रतोंकी पांच सहोदरा हों ऐसी पंच समितियोंको धारण करनेवाले आपको हम नमस्कार करते हैं। अन्तरात्माही में जुड़े हुए मनवाले वचनसंवृत्तिसे सुशोभित और शरीरकी संपूर्ण चेष्टाओंसे निवृत्त ऐसे त्रिगुप्तिधारक आपको हम नमस्कार करते हैं.

—=—

प्रभुके केवलज्ञानके समय इन्द्रद्वारा की हुई स्तुति.

हे जगत्पते! जैसे रत्नोंसे रत्नाकर शोभता है वैसेही आप अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य और आनन्दसे शोभते हो। हे देव! इस भरतक्षेत्रमें बहुत कालसे नष्टप्रायः धर्मरूप वृक्षको पुनः उत्पन्न करनेमें आप बीज समान हो। तथा हे प्रभो! आपके माहात्म्यकी कोई अवधि नहीं, कारण कि अपने २ स्थानमें रहनेवाले अनुत्तरविमानके देवताओंके सन्देहको आप जानते हो और उक्त संदेहका निवारण भी करते हो। महान् समृद्धिशाली और कान्तिसे प्रकाशमान इन समस्त देवताओंका जो

[illegible]

भरतचक्रवर्तीकृत ऋषभदेवस्वामीकी स्तुति.

हे अखिल जगन्नाथ! हे विश्वको अभयदाता! हे प्रथम तीर्थेश! हे संसारतारण! आपकी जय हो। आज इस अवसर्पिणीमें जन्मे हुए लोगोंरूपी पद्माकरको विकसित करनेमें सूर्य समान आपके दर्शनसे मुझे अन्धकारका नाश होकर प्रभातकाल हुआ है। हे नाथ! भव्यजीवोंके मनरूपी जलको निर्मल करनेकी क्रियामें कतक (कच्चक) के चूर्ण समान आपकी वाणी जयवन्ती है। हे करुणाके क्षीरसागर! जो आपके शासनरूपी महारथ में आरूढ होते हैं, उनको लोकाग्र [मोक्ष] दूर नहीं है। हे देव निष्कारण जगद्बन्धु आप साक्षात् देखनेमें आते हो इससे इस संसारको हम लोकाग्रसे भी अधिक मानते हैं। हे स्वामिन्! इस

संसारमें भी निश्चल नेत्रोंसे आपके दर्शनके महानंदरूपी द्रहमें हमको मोक्षसुखके स्वादका अनुभव होता है। हे नाथ! राग-द्वेष और कषायादि शत्रुओंसे घिरे हुए इस जगतको अभयदान देनेवाले आप उद्घाटित करते हो [छुडाते हो.] हे जगत्पते! आप तत्त्वका ज्ञान कराते हो, मार्ग बताते हो, और आप विश्वकी रक्षा करते हो, तो इससे विशेष आपके पास में क्या याचना करूं? । जो नानाप्रकारके उपद्रव और संग्राममें परस्परके ग्राम और पृथ्वीको छीन लेते हैं ऐसे ये सर्व राजा आपकी सभामें परस्पर मित्र होकर रहते हैं। आपकी पर्षदामें आया हुआ यह हाथी अपनी सूंडसे केशरीसिंहके पंजेको आकर्षण करके उससे अपने कुंभस्थलको वारम्वार खुजाता है। ये महिष, अन्य महिषकी भांति वारम्वार स्नेहसे अपनी जिह्वाद्वारा इस हिनहिनाते अश्वको मार्जन करता है। कौतुकसे अपनी पूंछको हिलाता हुआ यह मृग ऊंचे कान करके और मुखको नमाकर अपनी नासिकासे इस वाघके मुखको सुंघता है। यह तरुण मार्जार आगे पीछे और बाजूमें अपने बच्चोंकी भांति फिरते हुए मूषकोंको आलिंगन करता है। यह भुजंग अपने शरीरका कुंडल करके इस नकुलके पास मित्रकी भांति निर्भय होकर बैठा है। हे देव! ये दूसरे भी निरन्तरके वैरवाले प्राणी यहां निर्वैर होगये हैं. इन सर्वका कारण आपका अतुल्य प्रभाव है.

—x—

जन्तुओंके जन्मदुःखका छेदन करनेवाले आपका जन्म हुआ ?। हे नाथ! इस समय आपके जन्माभिषेकके जलके पूरसे प्लावित हुई और विना प्रयत्न ही निर्मलहुई यह रत्नप्रभा पृथ्वी यत्यनामवाली हुई है। हे प्रभो ! जो मनुष्य आपका अहर्निश दर्शन करेंगे उनको धन्य है. हम तो अवसरानुसार ही आपका दर्शन करनेवाले हैं। हे स्वामिन्! भरतक्षेत्रके जन्तुओंका मोक्ष-मार्ग रुद्ध होगया है, उसको आप नवीन पथ-प्रदर्शक हो कर पुनः प्रकट करोगे। हे प्रभो ! आपकी अमृत-तरंग समान धर्म-देशना तो दूर रही, परन्तु आपका दर्शन भी प्राणियोंको श्रेयस्कारक है। हे भवतारक! आपकी उपमाका पात्र कोई नहीं, इससे मैं तो यही कहता हूं कि आपके समान आपही हो, अतएव अब विशेष स्तुति किस प्रकार करना ?। हे नाथ! आपके सद्भूतार्थ गुणोंका वर्णन करनेको भी मैं असमर्थ हूं, क्योंकि स्वयंभूरमण-समुद्रके जलका कौन थाह पा सकता है?

हे भगवन्! जब कि महान् योगियोंसे भी आपके गुण भली भांति जानना अशक्य है, तो कहां तो स्तुति करनेके योग्य वे आपके गुण और कहां मैं नित्य प्रमादी स्तोता? तथापि हे नाथ! मैं यथाशक्ति आपके गुणोंका स्तवन करूंगा. क्या पंगु मनुष्य दीर्घ मार्गसे चले तो उसे कोई मना करता है?। हे प्रभो! इस संसाररूपी आतपके क्लेशसे विवशहुए प्राणियोंको जिनके चरणोंकी छाया छत्र-छायाका आचरण करती है ऐसे

आप हमारी रक्षा करो ?। हे नाथ! जैसे सूर्य परोपकारके
उदय होता है, वैसे केवल लोक ही के लिये विहार करते
कृतार्थ हो। हे प्रभो! मध्यान्हके सूर्य समान आपके प्रकट हो
पर देहकी छायाके समान प्राणियोंके कर्म चारों ओरसे संकुचि
हो जाते हैं। जो नित्य आपको देखते हैं उन तिर्यंचोंको भी धन्
है, और जो आपके दर्शनसे शून्य हैं वे स्वर्गमें निवास कर
हों तो भी अधन्य हैं। हे त्रिजगत्पते! जिनके हृदयरूपी चैत्य
में आप एक अधिदेवता निवास करते हो, वे भविकजन श्रेष्ठ
में भी श्रेष्ठ हैं। मैं आपसे केवल यही एक याचना करता हूं कि
ग्रामोग्राम और नगर-नगर विहार करते हुए आपने कदापि भी
मेरे हृदयको मत छोडना।

श्रीअजितजिन स्तुति.

हे प्रभो! श्रेष्ठ सुवर्णको काटने जैसी छविसे
भागको आच्छादन करनेवाली और विना प्रक्षा
ऐसी आपकी काया किसको आक्षेप नहीं करती है
मन्दारकी मालाके समान अंगमें देवांगनाओंके
प्राप्त होते हैं। हे नाथ! दिव्य अमृत-रस-
मानो नष्ट होगये हों वैसे रोगरूपी सर्पके स
प्रवेश नहीं कर सकते हैं। दर्पणकी सपाट
बिम्बके समान आपके शरीरमें पसी

था भी कैसे संभव होवे ? हे वीतराग ! आपका मनही मात्र
गरहित है ऐसा नहीं, परन्तु आपके शरीरमें रुधिर भी दूधकी
ाराके समान श्वेत है। आपमें अन्य बातें भी जगत्से विलक्षण
, ऐसा हम कह सकते हैं। कारण कि आपका मांस भी अबी-
त्स और शुभ्र है। जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पोंकी
ालाको छोडकर भ्रमरसमूह आपके निःश्वासकी सुगन्धीका
ानुसरण करते हैं। आपकी संसारस्थिति भी लोकोत्तर चम-
कारिक है, कारण कि आपके आहार और नीहार भी चर्म-
क्षुके गोचर नहीं होते।

हे प्रभो ! आप तीर्थंकर नाम कर्मसे सर्वके आभिमुख्यपनेसे
र्वदा सन्मुख होकर समस्त प्रजाको आनन्द उपजाते हो। तथा
क जोजनके प्रमाणवाले धर्मोपदेश-मंदिर (समवसरण)में करोडों
तिर्यंच मनुष्य देवता सपरिवार समा जाते हैं, और एक भाषामें
ोले जाने पर भी सबको अपनी २ भाषामें समज पडता हुआ और
अतिमनोहर आपका वचन जो धर्मका बोध करनेवाला है
ह भी तीर्थंकर नाम कर्म ही का प्रभाव है। आपकी विहार-
भूमिके चारों ओर सवासौ-सवासौ योजनतक पूर्वकालमें उत्पन्न-
हुए रोगरूपी वर्षाएं आपके विहाररूपी पवनकी लहरोंसे विना
यास ही नष्ट होजाती हैं। और राजाओंके द्वारा नष्ट कीहुई
अनीतिके समान, आप जहां विहार करते हो उस पृथ्वीमें मूषक
टीडी और तोते आदिकी उत्पत्तिरूप इति और दुर्भिक्षादि उपद्रव

[illegible]

और [illegible] संबन्धी क्षुद्र उपद्रव [illegible] नाशको प्राप्त होते हैं
सर्वप्रकारके अद्भुत प्रभाववाले और उत्तम कल्पवृक्षरूप
आपके पृथ्वीमें विहारकरनेसे दुर्भिक्षका क्षय हो जाता है। आप
मस्तकपर पृष्ठभागमें सूर्यमंडलके तेजको जीतनेवाला भामंड
आपका शरीर लोगोंको दुरालोक न होवे, ऐसा सोचकर पिंड
कार होगया हो ऐसा जान पड़ता है। हे भगवन्! घात
कर्मका क्षय होनेसे उत्पन्नहुई यह योगसाम्राज्यकी महि
विश्वमें प्रख्यात होगई है, वह किसको आश्चर्यका कारण नहीं
अनन्तकालसे संचित हुए अनंत कर्मरूपी गहनको आपके सिव
मूलसे अन्य कोई भी निर्मूल नहीं कर सकता है। क्रिया
समभिहारसे आप इस भांतिके उपायोंमें प्रवृत्त हो कि जिस
अनिच्छा होते हुए भी आप लक्ष्मीयुक्त हो। मैत्रीके पवित्र पा
रूप हर्षके आमोदसे सुशोभित और कृपा तथा उपेक्षा करने
वालोंमें मुख्य ऐसे आप योगात्माको मैं नमस्कार करता हूं।

हैं। भविष्यमें आपके चरणोंका स्पर्श होनेवाला है, यह सोचकर देवता सुगन्धित जल तथा दिव्य पुष्पोंकी वृष्टिसे उस पृथ्वीकी पूजा करते हैं। हे जगत्पूज्य ! पक्षीगण भी चारों ओरसे आपकी प्रदक्षिणा करते हैं, तो जो आपसे विमुखवृत्ति रखते हैं, और जगतमें बडे होकर फिरते हैं उन पुरुषोंकी क्या गति होगी? आपके समीप एकेन्द्रिय पवन भी प्रतिकूलताको छोड देता है, तो फिर पंचेन्द्रिय तो दौःशील्यवाले हो ही कैसे सकते हैं? आपके माहात्म्यसे विस्मित हुए वृक्ष भी मस्तक नमाकर आपको नमस्कार करते हैं, जिससे उनके मस्तक कृतार्थ हैं, परन्तु जिनके मस्तक आपको नमते नहीं ऐसे मिथ्यादृष्टियोंके मस्तक व्यर्थ हैं। जघन्यतासे करोडों सुर असुर आपकी सेवा करते हैं, कारण कि मूर्ख-आलसी पुरुष भी भाग्ययोगसे प्राप्तहुए अर्थ में उदासीनतासे नहीं रहते।

—*—

श्रीसंभवनाथजीकी स्तुति.

हे भगवन् ! विश्वप्रतिपालक ! महान् समृद्धिशाली और तृतीय तीर्थनाथ आप भगवन्तको मैं नमस्कार करता हूं। हे विभो! जन्महीसे प्राप्तहुए विज्ञान और चार अतिशयोंसे आप विलक्षण हो और आपमें प्रकट रूपसे एक सहस्र सुलक्षण विद्यमान हैं। निरन्तर प्रमादी पुरुषोंके प्रमादके विच्छेदका कारण रूप यह आपका जन्मकल्याणक आज मेरे समान व्यक्तिके कल्याण ही के

लिये हुआ है। हे जगत्पते ! यह सम्पूर्ण रात्रि प्रशंसनीय होगई है, कारण कि इसमें निष्कलंक चन्द्रमारूप आप प्रकट हुए हो। हे प्रभो ! आपको वन्दना करनेके लिये आते-जाते अनेक देवताओंसे यह मनुष्यलोक इस समय स्वर्गलोकके समान प्रतीत होता है। हे देव! आपके दर्शनरूप अमृतके स्वादसे जिनके चित्त सन्तुष्ट होगये हैं, ऐसे अमृतभोजी देवताओंको अब प्राचीन हुए स्वर्गके अमृतकी कुछ भी आवश्यकता नहीं। इस भरतक्षेत्ररूपी सरोवरमें कमलरूप हे भगवान् ! आपमें भ्रमरकी भांति मेरी पूर्णतः निमग्नता होजावे। हे परमेश्वर ! जो सदैव आपका दर्शन करते हैं, उन मनुष्योंको भी धन्यवाद है, कारण कि आपके दर्शन स्वर्गके राज्यसे भी अधिक हैं।

हे प्रभो ! न बुलातेहुए भी आप सबके सहायक हो, अकारण वात्सल्यवान् हो, प्रार्थना किये विनाही उपकारी हो और विना सम्बन्धके बान्धव हो, इससे हे नाथ! अभ्यंगन न करते भी स्निग्ध हृदयवाले, मलाकर्षण विना उज्वल वचनके बोलनेवाले प्रक्षालन किये विनाही निर्मल शीलवाले और शरण करनेके योग्य ऐसे आपके शरणका मैं आश्रय करता हूं। हे स्वामिन् ! शान्त होते हुए वीरव्रती, समतावान् और समदृष्टि आपने कर्मरूपी कुटिल कांटोंको अत्यन्त कुचल डाले हैं। भवरहित होते हुए महेश अगद (रोग रहित) होनेसे नरकका छेदन करनेवाले(कृष्ण) और रजोगुण रहित होनेसे ब्रह्मरूप, ऐसे आपको हम नमस्कार करते हैं। हे प्रभो!

ो ! दीर्घकाल तक आपके दर्शनसे उत्पन्नहुए मेरे रोमांच
रकालकी असद्दर्शन (मिथ्यादर्शन) की वासनाओंको दूर
ं। हे नाथ ! मेरे नेत्र सर्वदा आपके मुखको देखकर विलास
यें, मेरे हाथ आपकी उपासना करें और मेरे कान आपके गुण-
ता होवें। हे देवाधिदेव ! मेरी कुंठ बुद्धि जो आपके गुणोंको
हण करनेकी ओर उत्कंठित होवे तो उसका कल्याण हो,
योंकि उसको दूसरेसे क्या होनेवाला है ? हे नाथ ! मैं आपका
ष्य, दास, सेवक और किंकर हूं, ऐसा आप स्वीकार करो,
ससे अधिक दूसरा मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता।

हे भगवन् ! आपने सर्वदा कष्टकारी, मन, वचन और
ायाकी चेष्टाका संहार कर शिथिलपनसे मनरूपी शल्यको
थक् कर दिया है। हे नाथ! आपकी इन्द्रियां न तो सम्मत हैं
ार न उच्छृंखल ही हैं, इस प्रकार सम्यक् रीतिसे प्रतिपादन
रके आपने इन्द्रियोंको जीती है। योगके जो आठ अंग कहे हैं,
ह तो केवल प्रपंच मात्र हैं, अन्यथा यह योग बाल्यावस्थासे
ारम्भ करके आपकी आत्मसत्ताको कैसे प्राप्त होता ? हे स्वा-
मन् ! दीर्घकालसे साथ रहनेवाले विषयोंमें आपको विराग है
ौर अदृष्ट योगमें सात्म्यता है, यह हमको अलौकिक प्रतीत
ोता है। जैसा आप अपकार करनेवाले पर राग रखते हो, वैसा
सरे उपकार करनेवाले पर भी नहीं रखते। अहो ! आपके सर्व
ार्य असाधारण हैं। हे प्रभो! आपने हिंसक पुरुषों पर उपकार

किया और जो आश्रित थे उनकी उपेक्षा की, ऐसे आपके वि
चरित्रका कौन अनुसरण कर सकता है? हे भगवन्! परम
धीमें आपने अपनी आत्माको इस प्रकार जोड दिया है
जिससे 'मैं सुखी हूं कि दुःखी, अथवा सुखी दुःखी नहीं'
आपके मनमें भी नहीं आता। जिसमें ध्याता, ध्यान और
यह त्रिपुटी एकात्माको प्राप्त हैं ऐसे आपके योगके माहात्म्य
दुसरोंको कैसे श्रद्धा हो?

—=—

श्रीसुमतिनाथजीकी स्तुति.

हे देव! आपके जन्म-कल्याणकसे यह पृथ्वी कल्याणयु
हो गई है तो जब आप अपने चरण-कमलसे पृथ्वीपर विह
करोगे, उस समयकी तो बात ही क्या कहना? हे भगवन्! आप
दर्शनसे हमारी दृष्टियां कृतार्थ हुई हैं और आपका पूजन करने
यह हाथ भी कृतार्थ होगये हैं। हे जिननाथ! आपके
अर्चन आदि का जो महोत्सव किया गया है, वह मेरे चि
कालके मनोरथरूपी प्रासादके ऊपर कलशरूप होगया है।
जगन्नाथ! सांप्रतकालमें भी मैं इस संसारकी प्रशंसा करता
कारण कि, उसमें मुक्तिके एक निबन्धनरूप आपका द
प्राप्त हुआ है। हे देव! स्वयंभूरमण-समुद्रकी लहरें कभी गि
भी जा सकें परन्तु मेरे समान पुरुष, अतिशयोंके पात्र ऐसे आप
गुणोंको नहीं गिन सकते। धर्मरूपी मंडपके स्तम्भरूप, जगत

ात करनेमें सूर्यरूप और दयारूपी लताके आश्रयके लिए
ाल वृक्षरूप, हे जगतपते ! इस विश्वकी रक्षा करो। हे देव !
क्तिके बन्द हुए द्वारको उघाडनेमें कुंचीरूप आपकी देशना
यवन्त प्राणियों ही के सुननेमें आती है। हे भुवनेश्वर! उज्ज्वल
णिके समान मेरे मनमें नित्य प्रतिबिंबरूपसे पडीहुई आपकी
ते मुझे मुक्तिसुखकी कारणरूप होवे ।

हे भगवन् ! यह अशोकवृक्ष भ्रमरोंके गुंजारवसे मानो
ता हो, चलायमान पत्रोंसे मानो नाचता हो और आपके
णोंमें रक्त होनेसे मानो रक्त हुआ हो, ऐसा हर्षित होता दीखता
। ये देवता जिनके बन्धन (बींट) नीचे हैं ऐसे पुष्पोंको
जन प्रमाण आपकी देशना-भूमि पर घुटनों-प्रमाण बरसाते हैं।
पकी मालवकोशीकी आदि रागसे पवित्र जो दिव्यध्वनि
ती है, उसे मृगादिक भी हर्षसे ऊंची गर्दन करके पीते
(सुनते हैं.) आपके सन्मुख स्थित चन्द्र समान उज्वल यह
ामर-श्रेणी ऐसी शोभती है मानो आपके मुख-कमलकी सेवा
रनेको आई हुई हंसकी पंक्ति हो । जिस समय सिंहासन पर
बेराजकर आप उपदेश देते हो उस समय मृग मानो सिंहकी
वा करनेको आते हों वैसे उपदेश सुननेको आते हैं। ज्योत्स्ना-
 व्याप्त चन्द्रमा जैसे चकोर पक्षीको हर्ष उपजाता है, वैसेही
ान्तियोंसे व्याप्त आप सबकी दृष्टियोंको हर्ष उपजाते हो । हे
वेश्वपते ! आपके सन्मुख आकाशमें ध्वनी करता हुआ दुन्दुभी

सर्व जगतमें आप्त पुरुषोंको मानो आपके विस्तृत
बताता हो ऐसा मालूम होता है। पुण्यसमृद्धियोंके क्रम
और त्रिभुवन ऊपरके आपके प्रौढ प्रभुत्वको बताते हुए ये
छत्र आपके ऊपर शोभा देरहे हैं। हे नाथ! आपकी ऐसी
हार्य लक्ष्मीको देखकर कौन मिथ्यादृष्टि भी आश्चर्य नहीं

श्रीपद्मप्रभुजीकी स्तुति.

हे देव! इस अपार संसाररूप मरुदेशमें संचार करते
प्राणियोंको चिरकालमें अमृतकी प्याउ समान आपका दर्श
हुआ है। अनुपम रूपवन्त ऐसे आपको अश्रान्तपनसे देखनेवा
देवताओंकी अनिमेपता कृतार्थ हो गई है. आपके जन्मके सम
नित्य अंधकारमें उद्योत हुआ जिससे नारकियोंको भी सुख प्रा
हुआ, अत एव आपका तीर्थंकरत्व किसको सुखरूप नहीं ?
नाथ! संसारियोंके पुण्यों ही से आप धर्मरूपी वृक्षको दया
रूपी नीकके जलसे सिंचन करके वृद्धिको प्राप्ति करते हो।
प्रभो! जलकी शीतलताके समान त्रिलोकका स्वामित्व और तीन
ज्ञानका धारण आपको जन्म ही से सिद्ध है। हे पद्मके समान
वर्णवाले, पद्मके चिन्हवाले, पद्मकी समान सुगन्ध मुखपवन
धारण करनेवाले, पद्म समान मुखवाले, पद्मा (लक्ष्मी) युक्त
और पद्मके गृहरूप प्रभो! आपकी जय हो। हे नाथ! यह अपार
और दुस्तर संसाररूपी सागर अब आपके प्रसादसे जानुप्रमाण

हो जावेगा। हे स्वामी! अब मैं कल्पान्तरका साम्राज्य या अनुत्तरविमानके निवासकी भी इच्छा नहीं करता। मात्र आपके चरणकमलोंकी सेवा ही चाहता हूं।

हे प्रभो! परिसहोंकी सेनाको नष्ट करते और उपसर्गोंको विदारण करते हुए भी आप शांतस्वरूप हो। अहा! महान् पुरुषोंकी कैसी विद्वत्ता? हे नाथ! आप विरागी होते हुए मुक्तिको भोगनेवाले हो, और अद्वेषी होते हुए शत्रुओंको मारनेवाले हो, अहो! महात्माओंकी कैसी लोकदुर्लभ महिमा है? हे देव! आप सर्वदा जिगीषा याने जितनेकी इच्छा रहित हो और अपराधसे भय पाते हो तथापि आप त्रैलोक्यविजयी हो। अहा! महान् पुरुषोंकी कैसी चतुरता? हे नाथ! किसीको आपने कुछ दिया नहीं और किसीके पाससे कुछ लिया नहीं तथापि आपको प्रभुता प्राप्त है। अहा! विद्वानोंकी कैसी विचित्र-कला होती है? हे प्रभो! जो सुकृत दूसरोंने देह त्याग कर देने पर भी प्राप्त नहीं किया वही सुकृत, सुकृत सम्पादनमें उदासीन ऐसे आपके चरणपीठ पर लोटता है। रागादिक पर क्रूर और समस्त प्राणियोंपर कृपालु जिससे भयंकर और मनोहर उभय गुणयुक्त आपने संपूर्ण साम्राज्य वशमें किया है। अहो! श्रेष्ठशिरोमणी और महात्माके पूजनीय आप मेरी स्तुति-गोचर हुए हो। हे स्वामिन्! दूसरोंमें सर्व प्रकारके दोष हैं और आपमें सर्वप्रकारके गुण हैं. यह आपकी स्तुति जो मिथ्या हो तो इस विषयमें ये सभासदोंही प्रमाणरूप

हैं। हे जगत्पते ! मेरी यही इच्छा है कि मुझे आपके
वारम्वार दर्शन हो, इसके अतिरिक्त मोक्षकी भी मुझे चाह नहीं

—०—

श्रीसुपार्श्वनाथजीकी स्तुति.

हे प्रभो ! अविज्ञेयस्वरूप आपके विषयमें जो मैं
करनेका विचार करता हूं वह आदित्यमंडलको ग्रहण
लिये वानरके उछलनेके समान है, तथापि परमेश्वर आपही
प्रभावसे मैं आपकी स्तुति करूंगा, कारण कि, चन्द्रकान्तमणि
चन्द्रके प्रभावहीसे झरती है. हे प्रभो! आपके सर्व कल्याणकों
अवसरपर आप नारकियोंको भी सुख देते हो, तो तिर्यंच,
और देवताओंको सुखदाता आप कैसे नहीं हो ?, आपके जन्मो
त्सवके समय त्रिलोकमें जो उद्योत हुआ है वह ऐसा प्रतीत ह
है कि मानो भविष्यमें उदय होनेवाले केवलज्ञानरूप सूर्यक
अरुणोदय है। हे परमेश्वर ! मानो आपहीके प्रसादके संपर्क
ये सर्व दिशाएं प्रसन्न हो रही हैं. हे पवित्राकृतिप्रभो! इस समय इ
पवनका भी सुखकारी प्रवाह है, कारण कि, आपके समान
सुखकारी प्रभुके प्रगट होने पर जगतमें कौन प्रतिकूल वर्ताव
करनेवाला हो सकता है ? हे प्रभो ! हमारे प्रमादको धिक्कार है
कि जिसको आपके जन्म समयकी खबर न पडी और हमारे
इन आसनोंको धन्य है कि जिन्होंने चलायमान होकर हमको
आपके जन्म-कल्याणककी खबर दी। हे प्रभो ! निदान बांधना

ापिद्ध है, तथापि आपके दर्शनका फल मुझे निरंतर आपकी
क्ति ही के रूपमें प्राप्त हो, ऐसा मैं निदान बांधता हूं।

सर्व भुवन-कोप-कमल दिवाकर. श्री अष्टम अरिहंत भगवान!
आपको नमस्कार करता हूं। हे प्रभो! अब विश्वके दुःखका
ाश होकर हर्ष उत्पन्न हुआ है, कारण कि, तीर्थ परावर्त्तनसे
ह विश्व मानो परावृत्त हुआ जान पडता है। हे धर्मचक्रिन्!
ापके प्रकाशमान वचनरूप रत्नदंडसे आज निर्वाणरूप वैताढ्य-
ारिका द्वार खुलेगा। हे नाथ! उन्नतमेघके समान आपका उपदेश
ाखिल जीवलोकके संतापका निवारण करनेसे हर्षके निमित्त
ोता है। हे अनन्तज्ञानी भगवन्! आपके उपदेश वचन, दरिद्री
ीर्घकालमें द्रव्य पावे इस भांति मैं चिरकालमें प्राप्त करूंगा। प्रथम
ापके दर्शनसे कृतार्थ हुआ, मैं अब आपके अत्यन्तयुक्तियुक्त
ौर मुक्ति-द्वारको प्रकाशित करनेवाले देशना-वचनसे आज विशेष
ृतार्थ होऊंगा। हे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य और
ानन्तआनन्दमय स्वरूपवन्त तथा सर्व अतिशयोंके पात्ररूप,
ोगीस्वरूप! भगवान् आपको मैं नमस्कार करता हूं। हे जगत्पते!
ाह इन्द्रादिक पदवीकी प्राप्ति तो कुछ गिन्तीमें नहीं है, कारण
के आपकी सेवासे तो आपहीके समान होजाते हैं।

श्रीचन्द्रप्रभुजीकी स्तुति.

हे प्रभो! आकाशको आधार देनेकी बुद्धिसे ऊंचे पैर करके
रहनेवाले टिटहरे पक्षीकी भांति मैं, अनन्तगुणवन्त आपकी स्तुति

करनेको प्रवृत हुआ हूं, इससे पंडितोंके हास्यका स्थानरूप है
तथापि आपके प्रभावसे व्यापकबुद्धि प्राप्त होनेसे में आपकी
स्तुति करनेको समर्थ होऊंगा। कारण कि एक लेशमात्र बादल
का भाग भी पूर्व दिशाके पवनके संगमसे सर्वदिशाओंमें व्याप्त
होजाता है। हे प्रभो! भवि-प्राणियोंको दर्शनमात्रसे अथवा ध्या
करने मात्रसे आप उनके कर्मरूप पाशको काटनेको अपूर्वशस्त्र
रूप होजाते हो। सूर्यसे कमलोंका अभ्युदय होता है वैसेही विश्व
अंधकारको नाश करनेवाले अपूर्वसूर्यरूप आपके जन्मसे आ
जगतके शुभकर्मका उदय हुआ है। चन्द्रकी किरण मात्र पडने
जैसे शेफालिकाके पुष्प गिर पडते हैं,वैसेही मेरा अशुभ भी आपक
दृष्टिसे अपना फल दिये विना ही नष्ट हो जावेगा। विश्व
अभय देनेवाला आपका दीक्षाधारी स्वरूप तो एक तरफ रहे,
परन्तु हे भगवन्! आप इस बालमूर्तिसे भी प्राणियोंके दुःखको
हर लेते हो। वनके वृक्षोंको समूल उखाड डालनेको जैसे उन्मत्त
गजेन्द्र आता है, वैसेही आपने, संसार मूल है जिसका ऐसे
कर्मोंका नाश करनेके लिये यहां अवतार लिया है। हे त्रैलोक्य
नाथ! जैसे मुक्ताहारादि मेरे हृदयके बाह्य आभूषण हैं, वैसे ही
आप मेरे हृदयके अन्तर आभूषण हो।

हे प्रभो! सुर, असुर और मनुष्योंने मस्तकपर धारण
किया हुआ तीनों लोकके चक्रवर्ती समान आपका शासन जगत
में विजयी है। हे भगवन्! प्रथम तीन ज्ञानके धारण करनेवाले,

[illegible] जिससे अब मुझे [illegible] फल [illegible] हुआ है। इस
भारतमें पीड़ित लोगोंको आनंद [illegible]. आपने इस मनुष्य
लोकमें नवीन [illegible] की भांति [illegible] किया है। [illegible]
समान आपके दर्शनसे आज सभी प्राणियोंको नवीन [illegible]
हो गये हैं। जो दिवस आपके दर्शनसे [illegible] हैं वे ही मेरे दि-
दिवस हैं, और दिवस मुझे कृष्ण पक्षकी रात्रिके समान हैं। आत्मा
के साथ नित्य लगे हुए अयस्कान्तमणिसे लोहेकी भांति प्राणियों
के कुकर्म आपके दर्शनादिकसे आज पृथक् हो जावें, इस लोक
में, स्वर्गमें अथवा अन्यत्र कहीं भी रहूं तो भी आपहीको हृदय
में धारण करनेवाला मैं आपका वाहन होऊं, यही मेरी इच्छा है।

हे त्रिभुवन-पते ! जो पुरुष आपके चरण-कमलके नखकी
कांतिके जालरूपी जलके प्रवाहमें स्नान कर २ के अपने
आत्माको पवित्र करते हैं उनको धन्य है। सूर्यसे जैसे आकाश
हंससे जैसे सरोवर और राजासे जैसे नगर, वैसे ही आपसे यह
भरतक्षेत्र शोभता है। सूर्यास्त और चन्द्रोदयके अन्तरमें अन्ध-
कारसे जैसे प्रकाश पराभव पाता है, वैसे ही नवमें दशमें दो
प्रभुओंके अन्तरमें मिथ्यात्वसे धर्मका पराभव हो गया है।
विवेकरूपी लोचन रहित यह जगत अंध होकर मानो दिशा-
शून्य हो गया हो, उस तरह सर्वप्रकारसे कुमार्गोंमें प्रवृत्त होरहा
है। सर्वलोग भ्रान्तिवश अधर्मको धर्मबुद्धिसे, अदेवको देवबुद्धि-
से और अगुरुको गुरुबुद्धिसे ग्रहण करते हैं. इस प्रकार यह

गत नरकरूप गड्ढेमें पड़नेको तैयार हो ही गया था, इतने-
उसके पुण्योदयसे स्वाभाविक दयाके सगुद्र आपने अवतार
लिया। हे प्रभो! जब तक आपके वचनरूपी अमृतका इस लोक-
प्रसार नहीं हुआ, तभीतक इस लोकमें मिथ्यात्वरूपी सर्प
चिरकाल समर्थ होकर फिरता है; परन्तु घातिकर्मोंके क्षयसे
से आपको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, उसी तरह आपके
पदेशसे इस जगत्को मिथ्यात्वका नाश होकर समकितकी
प्राप्ति होगी।

—०—

श्रीश्रेयांसनाथजिन स्तुति.

हे प्रभो! सर्वकल्याणकोंमें श्रेष्ठ आपका जन्म-कल्याणक
मुझ पवित्र भक्तिवानको कल्याणकारी हो। हे ईश! आपको मैं
कितना स्नात्र कराऊं? आपका कितना पूजन करूं? और
आपका मैं कितना स्तवन करूं? मुझे आपका आराधन करनेमें
तृप्ति ही नहीं होती। हे प्रभो! आपके समान रक्षक होजाने
पर अन्यतीर्थीरूपी व्याघ्रसे भय पाया हुआ यह धर्मरूपी वृषभ
अब इस भरतक्षेत्रमें स्वेच्छासे विचरे। हे देवाधिदेव! आज सौभा-
ग्यसे मेरे हृदय-मंदिरमें आपने निवास करके उसे सनाथ किया
है। जिस प्रकार आपके चरण-नखकी किरणें मेरे सिरपर प्रसरने-
से मुझे आभूषणरूप होती हैं, उसी प्रकार ये मुकुटआदि आभू-
षण नहीं होते। हे त्रिजगन्नाथ! आपके गुणोंकी स्तुति करते हुए

मुझे जो प्रसन्नता होती है वैसी प्रसन्नता चारणभाटादि स्तुति करें उस समय भी नहीं होती। आपके साथ भूमि बैठते मेरी जैसी उन्नति होती है वैसी उन्नति सौधर्म-देवलोक सिंहासन पर बैठते भी नहीं होती। हे प्रभो! आपके समान स्वा मीकी पराधीनतामें मैं जैसे दीर्घकाल रहना चाहता हूं, वैसे राज्यकी स्वतन्त्रतामें भी रहना मैं नहीं चाहता।

हे परमेश्वर! अखंड आनन्दके द्रहको देने वाले और मोक्ष कारणभूत आपको मोक्षके निमित्त हमारा नमस्कार है। आप दर्शनमात्रसे ही प्राणी अन्य कर्मोंको विस्मरण करके आत्म होजाते हैं तो आपका उपदेश सुननेसे क्या नहीं हो सकता! इस संसाररूपी मरुदेशमें आपका अवतार होनेसे मानो क्षीर समुद्र प्रकट हुआ हो, कल्पवृक्ष ऊगा हो, अथवा मेघवृष्टि हुई हो, ऐसा भास होता है। क्रूरकर्मरूप दुष्टग्रहोंसे पीडित इस विश्वका रक्षण करनेके हेतु आप ग्यारहवें जिनेन्द्र ज्योतिषियोंके पति (चन्द्र) रूपसे उदय हुए हो। स्वभाव ही से निर्मल इक्ष्वाकु-राजाका कुल, जलसे स्फटिककी भांति आपने विशेष निर्मल कर दिया है। हे प्रभो! त्रैलोक्यके सर्वप्रकारके संतापको हरनेसे आपका चरणमूल समग्र प्रकारकी छायाओंसे भी अधिक मालुम होता है। हे जिनेश्वर! आपके चरणकमलोंमें भ्रमररूपसे रहनेमें मुझे इतना अधिक हर्ष होता है कि जिससे भोग अथवा मोक्षके लिये भी मुझे स्पृहा नहीं रहती। हे जगन्नाथ! मैं प्रार्थना

रता हूं कि मुझे भवोभव आपके चरणकी शरण प्राप्त होवे.
(पकी सेवासे क्या नहीं सध सकता ? ।

—०—

श्रीवासुपूज्यजिन स्तुति.

हे नाथ ! चक्रवर्तियोंके चक्रोंसे, वासुदेवके चक्रसे, ईशा-
न्द्रके त्रिशूलसे, मेरे वज्रसे और दूसरे इन्द्रोंके अस्त्रोंसे भी जो
र्म कभी भी भेद नहीं पाते वे कर्म आपके दर्शनमात्रसे
ष्ट होजाते हैं । क्षीर-समुद्रकी लहरोंसे, चंद्रादिककी कान्तिसे,
घकी धाराओंसे, गोशीर्ष–चन्दनके लेपनसे और कदली-वृक्षों
केले के वृक्ष) के घने उद्यानोंसे जो दुखोंका परिताप शान्त
हीं होता, वह आपके दर्शनमात्रसे तत्काल शान्त हो जाता
। अनेक प्रकारके क्वाथों (काढा) से, भांति भांति के चूर्णोंसे
ानाप्रकारके लेपोंसे, अनेक प्रकारकी शस्त्रक्रियासे, तथा बहुत
कारके मंत्रप्रयोगोंसे जो रोग मिटते नहीं, वे रोग आपके
र्शनमात्रसे तुरन्त प्रलयको प्राप्त होजाते हैं। हे प्रभो ! अधिक
या कहा जाय ? संक्षेपमें यही कहना है कि जो कुछ इस जगत
असाध्य है, वही आपके दर्शनमात्रसे साध्य हो जाता है,
सलिये हे जगत्पते! इस आपके दर्शनका मैं यही फल चाहता
कि मुझे वारंवार आपका दर्शन हो ।

हे प्रभो ! इस संसाररूपी अतिभयंकर समुद्रमें एक ओर
ोहरूपी दुर्दिन प्रसर रहा है, एक ओर आशारूपी नई नई तरंगें

क्षण २ में उत्पन्न हो रही हैं, एक ओर भयानक मगरके समान
दुर्वार कामदेव उपस्थित है, एक ओर प्रतिकूल और प्रचंड पवन
के समान विषय प्रवृत्त हो रहे हैं, एक ओर महान आवर्त्त (भ्रमर)
की भांति क्रोधादिक उग्र कषाय स्थित हैं, एक ओर तीक्ष्ण खड्ग
के समान उत्कट राग द्वेष रहते हैं, एक ओर भीषण उर्मियों
(लहरों) की भांति विविध दुखोंकी परम्परा है, एक ओर वड
वानलकी भांति आर्त्त तथा रौद्र ध्यान हुआ करता है, एक ओर
वेंतकी लताके समान स्खलना करनेवाली ममता है और एक
ओर उद्धत मगरमच्छोंकी भांति बहुतसी व्याधियां आया करती
हैं; जिससे हे प्रभो ! ऐसे दारुण संसाररूपी सागरमें पडे हुए
प्राणियोंका अब आप उद्धार करो। हे जगत्पते ! आपका केवल
ज्ञान और केवल-दर्शन वृक्षके पुष्प और फलकी भांति परोपकार
ही के लिये है। आज मेरा जन्म और वैभव कृतार्थ हुआ है, कारण
कि उससे आपकी पूजाका महोत्सव करनेका मुझे लाभ प्राप्त
हुआ है।

—०—

श्रीविमलनाथजिन स्तुति.

हे जगत्पते ! चारों ओर फैले हुए मोहरूपी अंधकारसे,
अत्यन्त कोप करनेवाले जटाधारी, तापसरूपी निशाचरोंसे बुद्धि
रूप सर्वस्वको हरण करनेवाले चार्वाक (नास्तिकमत) रूपी
चित्कारोंसे, मायाकपटमें अति निपुण ब्राम्हणरूपी शियालोंसे,

ुदाय होकर फिरते कोलाचार्य (बडा शियाल) रूपी शेरोंसे, नेक प्रकारकी चेष्टा करते हुए पाखंडी रूप उल्लू पक्षियोंसे र विवेकरूप नेत्रोंको लुप्त करनेवाले मिथ्यात्वरूपसे तथा भूत पदार्थके सर्वप्रकारके अज्ञानसे यह समय बहुत कालसे त्रिके समान इस भरतक्षेत्रमें प्रवर्तित हो रहा था, उसमें आपके ान सूर्यका उदय होते ही अब प्रभातकाल हुआ है। नीचे ानमें बहनेवाली यह संसाररूपी नदी जो कि अभी तक टि जनोंसे उल्लंघन नहीं की जा सकी वह अब आपके चरण-प सेतुको प्राप्त कर सुखसे उल्लंघन करनेके योग्य हो गई है। मैं चिता हूं कि जो भव्यजन आपके शासनरूपी निश्रेणी (निस-ी) पर चढे हैं वे थोडे ही समयमें ऊंचे लोकाग्र पर भी पहुं-ही चुके हैं. ग्रीष्मऋतुके तापसे संतप्त मुसाफिरोंको जैसे बरसात प्त हो वैसे ही स्वामी रहित हमको चिरकालमें आप एक तम स्वामी प्राप्त हुए हो।

हे देव! वर्षा-कालके जलसे पृथ्वीके कादवकी भांति ापके दर्शनसे इस जगतके प्राणियोंका सांसारिक दुःख नष्ट गया है। हे स्वामी! आपके दर्शनका कारणरूप आजका वस बहुत ही पवित्र है कि जिसमें दुष्कर्मसे मलीन हुए हम मिल होवेंगे। हमारी दृष्टियोंने शरीरके सर्व अंगोंमें राजापना प्त किया था, उन्होंने आज आपका दर्शन प्राप्तकरके अपनी थायोग्य शुद्धि की है। आपके चरणके संपर्कसे इस भरतक्षेत्रकी

भूमि पवित्र होगई है तो आपके दर्शन उनके पापोंका ... उसमे कहना ही क्या है ? हे प्रभो ! उल्लू-पक्षियोंकी भाँ... मिथ्यादृष्टि पुरुषोंको आपका दर्शन केवलज्ञानरूप सूर्य... प्रकाशके अभाव ही का कारण होगा। आपके दर्शनरूप अमृ... पानसे जिनका शरीर उच्छ्वास पाया हुआ है ऐसे प्राणियों... कर्मबन्ध आज अवश्य टूट जावेंगे। विवेकरूपी दर्पणको सा... करनेमें तत्पर और कल्याण-वृक्षके बीजके समान आपके चर... णोंकी रज-कणें हमको पवित्र करें। हे स्वामी ! अमृतकी घूं... (गंडूस) रूप आपके देशना-वचन संसाररूप मरुदेशमें मग्न हुए... हमको स्वस्थकारी होवें।

—०—

श्रीअनंतनाथजिन स्तुति.

हे नाथ ! जो आपके सन्मुख पृथ्वीपर लोटकर पृथ्वीकी रजसे व्याप्त होते हैं, उनको गोशीर्ष-चन्दनका अंगराग दुर्ल... नहीं है। जो भक्तिपूर्वक एकपुष्प भी आपके मस्तक पर चढा... हैं, वे मस्तकपर छत्र धारण करके निरंतर विचरते हैं। आपके अंगपर जिन्होंने एकवार भी विलेपन किया हो तो वे देवदूष्य वस्त्रको धारण करनेवाले हों इसमें कुछ भी संदेह नहीं। जो आपके कंठमें एक वार भी पुष्पमाला डालते हैं उनके कंठ प... देवांगनाओंकी भुजलताएं लिपट जाती हैं। जो आपके अति निर्मल गुणोंका एकवार भी वर्णन कर ते हैं वे लोकमें अतिशय...

ान होके देवताओंकी स्त्रियोंसे प्रशंसित होते हैं। जो चारु चतु-
ईसे आपके सन्मुख नृत्यादिक चेष्टा करते हैं, उनको ऐरावत
ाथीके स्कंधपर आसन मिलना दुर्लभ नहीं। हे देव! जो
ातदिन आपके परमात्म-स्वरूपका ध्यान करते हैं वे सदैव
स लोकमें स्मरणीय हैं। हे प्रभो! आपको स्नात्र, विलेपन,
प और आभूषण आदि धारण करानेमें आपके प्रसादसे सदैव
री सत्ता रहे।

हे प्रभो! जब तक आप अधीश्वर नहीं हुए तभी तक
ाणियोंके मनरूपी धनको विषयरूप चौर चुरा सकता है।
ोगोंकी दृष्टिको अन्ध करनेवाला और विस्तृत होता हुआ
ोपरूपी अन्धकार आपके दर्शनरूपी अमृतांजनसे दूर भाग
ाता है। जबतक अज्ञ-प्राणी आपके वचनरूप मंत्रको नहीं श्रवण
रते तभी तक उनको मानरूपी भूत लगा रहता है। आपके
सादसे मायारूप वेडीको तोडकर सरलतारूप वाहनमें बैठने-
ाले प्राणियोंको मुक्ति कुछ भी दूर नहीं, जैसे २ प्राणी निस्पृह-
ासे आपकी उपासना करते हैं वैसे २ आप उनको उत्कृष्ट
ल देते हो, यह बडा ही आश्चर्य है। इस संसाररूपी सरिताके
ाग और द्वेष रूपी दो प्रवाह हैं। उसके मध्यमें द्वीपके समान
ध्यस्थपनेमें आपके शासनसे रहा जाता है। मोक्ष-द्वारमें प्रवेश
रनेको उत्सुक मनवाले प्राणियोंको मोहरूपी अन्धकारमें आप
ैसा दीपकपना धारण करते हो वैसा दूसरा कोई भी धारण नहीं

करता, इसलिये हे परमेश्वर ! आप प्रसन्न हों, कि जिस
हम निद्रा, कषाय, राग, द्वेष और मोहादिकसे अजित हो जावें

श्रीधर्मनाथजिन स्तुति.

हे परमध्यान करने योग्य स्वरूपवाले और परमध्या
करनेवाले पन्द्रहवें तीर्थंकर! आपको मेरा नमस्कार है। हे धर्म
देव और दानवसे मैं मनुष्यकी महत्ता बडी मानता हूं, क्या
कि त्रैलोक्यके वन्दन करने योग्य आप मनुष्यत्वमें प्रगट हुए है
हे नाथ ! मोक्षरूप साध्यको सिद्ध करलेनेके लिये आप
शिष्य होनेके इच्छुक मुझको इसी समय इस दक्षिण भारतव
मनुष्यत्व प्राप्त हो। जिन प्रमादियोंको आपके चरणका द
नहीं होता, ऐसे स्वर्गवासी सुखी होते हुए भी उनमें आ
नारकी-जीवोंमें कुछ भेद नहीं है। हे प्रभो! जब तक सूर्यकी भांति
आपका उदय नहीं हुआ था तभी तक उल्लू-पक्षियोंकी भांति
कुतीर्थी-लोग बोल सकते थे। अब वर्षासे सरोवरकी भांति
आपके धर्मोपदेशरूप जलसे यह भरतार्द्ध थोडे ही समयमें
संपूर्ण भर जावेगा। हे परमेश्वर ! जिस प्रकार राजा शत्रुके
देशको मुक्त करके उसका राज्य उसे दे देता है, वैसेही आप
अनन्त प्राणियोंको मुक्त करके अचल सुख दोगे। हे भगवन्!
देवलोकमें भी भ्रमरकी भांति आपके चरण-कमलमें लयलीन
चित्तसे मेरे दिन निर्गमन हो।

हे भुवनेश्वर ! आपके दर्शन और स्पर्शसे आज नेत्र और हा
वास्तविक नेत्र और हाथ हुए हैं। हे नाथ ! आज मेरा स्वा
त्विक अवधिज्ञान भी सफल हो गया है कि जिसके द्वारा हे प्रभो
आपका जन्म हुआ जानकर हमने जन्मोत्सव किया है। हे प्रभो
जैसे अभी स्नात्रके समय आप मेरे हृदय पर रहे थे वैसे ही
हृदयके अन्दर भी चिरकाल रहो

हे चतुर्विधधर्मोपदेशक, समवसरणमें चार विंब होनेसे
चतुःशरीर, चतुर्मुख और चतुर्थ पुरुषार्थ (मोक्ष) के स्वामी
हम आपकी स्तुति करते हैं। हे जगदीश्वर ! आप निःसंगतासे
चौदह महारत्नोंका त्यागकर तीन निर्दोष रत्नोंको धारण करते
हो। हे नाथ ! आप संपूर्ण विश्वके मनको हरते हो तथापि
मनरहित हो और उत्तम स्वर्णके समान वर्णवाले होते हुए
चन्द्रके समान शीतल आपके स्वरूप का ध्यान होता है। हे प्रभो!
आप निःसंग होते हुए महान् ऋद्धिशाली हो, ध्यान करनेके
योग्य होते हुए ध्याता हो, करोडों देवोंसे घिरे हुए होते भी
कैवल्य ही को भजते हो, स्वयं वीतराग होते हुए आपके
ऊपर विश्वका राग बढाते हो, और अकिंचन होते हुए जगतको
परम समृद्धिके कारण होते हो। हे अर्हन्! जिनका प्रभाव जाना
नहीं जा सकता और जिसके रूपका वर्णन नहीं किया जा सकता
ऐसे दयालु सत्रहवें भगवान् ! आपको हमारा नमस्कार है। हे
विभो ! आपको प्रणाम करनामात्र भी मनुष्योंको अचिन्त्य

ामणिरूप हो जाता है तो आपका मनसे, ध्यानसे और
नसे स्तवन करते क्या नहीं हो सकता ? हे प्रभो ! आपके
नमें, प्रणाममें, ध्यानमें और आपहीके विषयमें मेरी सदा
त्ति रहे, अन्य मनोहर पदार्थोंकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं।

श्रीअरनाथजीकी स्तुति

अट्ठारह दोष रहित और अट्ठारह प्रकारके ब्रह्मचर्यको
ण करनेवाले पुरुषोंके ध्यान करने योग्य, अट्ठारहवें तीर्थंकर!
को मेरा नमस्कार है। हे तीर्थनाथ! जिस प्रकार आप
हीमें से तीन ज्ञान धारण करते हो, उसी प्रकार इस त्रैलो-
को भी धारण करते हो। हे स्वामी! रागद्वेषादि तस्कर मोह-
अवस्वापिनी निद्रा डालकर इस त्रिजगतको चिरकालसे लूट
हैं, इस लिये अब शीघ्र उसकी रक्षा करो। हे नाथ! थके हुए
। रथको, तृष्णातुर नदीको, तापसे सन्तप्त वृक्षकी छायाको,
। हुए नौकाको, रोगी औषधिको, अंधकारसे अंधे हुए दीपक-
हिमसे पीडित हुए सूर्यको, मार्ग भूले हुए भूमिहारेको और
घ्रसे भय पाये हुए अग्निको प्राप्त करते हैं, वैसे अनाथपनेके
ण चिरकालसे वियोगी हुए हमने आपके समान तीर्थपति
को प्राप्त किये हैं। आपके समान स्वामीको प्राप्त कर
र, असुर और मनुष्य हर्षसे न समाते अपने २ स्थान-
यहां आते हैं। हे नाथ! मैं आपसे और कुछ नहीं मांगता,
। इतना ही मांगता हूं कि आप भवोभवमें मेरे नाथ होवें।

त्रिभुवनके अधीश्वर, अखिलविश्व पर वात्सल्य भाव वाले, करुणासागर और अतिशयोंसे सुशोभित, हे प्रभो! जय हो। हे नाथ! जैसे निष्कारण जगत्के उपकारके अपनी सकल किरणोंसे विश्वको प्रकाशित करता है, चन्द्र ज्योत्स्नासे विश्वका सन्ताप हरता है, वर्षाऋतु मेघके जगतको जीवन देती है, वायु अपनी निरंतर गतिसे ज आश्वासन करता है, वैसे ही निष्कारण त्रिलोकके उपकार लिये आपकी प्रवृत्ति विजयिनी होती है। हे स्वामी! यह जगत अभी तक अंधकारमय और अंधा हो रहा था, वह अब प्रकाशमय और नेत्रयुक्त हुआ है। हे नाथ! अब नरकका बन्द हो जावेगा। तिर्यचयोनिमें भी थोडी गति प्रवर्तेगी, लोक सीमास्थित एक अन्यग्रामके समान होवेगा और जो अत्यन्त दूर है वह भी समीप हो जावेगी। हे प्रभो! उपकार करनेके लिये आपके विहार करते हुए प्राणियोंको अ भावित कल्याण भी क्या २ प्राप्त नहीं होता? अर्थात् कल्याण प्राप्त होता है।

—०—

श्रीमल्लिनाथजिन स्तुति.

त्रिज्ञान-निधि और त्रैलोक्य-शिरोमणि उन्नीसवें तीर्थंकरको मैं नमस्कार करता हूं। हे नाथ! सौभाग्यसे आपके द मैं चिरकाल तक भी अनुगृहीत हुआ हूं, क्योंकि साधारण

अर्हंत प्रभुका साक्षात् दर्शन नहीं होता। हे देव! आज आपके
ोत्सवके दर्शनसे देवताओंका देवत्व सफल हुआ है। एक
फ अच्युत-इन्द्रके ऊपर और दूसरी तरफ अन्य प्राणियोंके
र समान अनुग्रह करनेकी बुद्धिवाले हे प्रभो! संसारमें पडते
हमारी रक्षा करो। पृथ्वीके सुवर्णमुकुट सदृश आप इन्द्र-
मणिकी भांति अतिशय शोभते हो। इच्छा किये विना ही
ऊ स्मरण करनेसे ही आप मोक्षके कारण होते हो तो दर्शन
स्तुति करके उससे अधिक आपसे क्या फल मांगू ? एक
फ सम्पूर्ण धर्म कार्य और एक तरफ आपका दर्शन इन दोनों
फलकी तुलना करते, आपका दर्शन अधिक फलप्राप्तिका
नरूप जान पडता है- आपके चरणकमलमें लोटते मुझे जैसा
होता है वैसा सुख इन्द्रपनेमें, अहमिन्द्रपनेमें अथवा मोक्ष-
ी नहीं होता, ऐसा मैं मानता हूं.

हे अर्हन्! सौभाग्यवश जो आपके चरणोंमें नमते हैं,
के ललाट पर आपके चरण-नखोंकी जो किरणें पडती हैं, वे
भयंकर भवसे भयभीत हुए प्राणियोंको रक्षाके तिलक
ान हो जाती हैं। हे प्रभो! मैं ऐसा मानता हूं कि आप
से ही ब्रह्मचारी होनेसे आपको दीक्षा भी जन्मसे ही है,
उससे आपका संपूर्ण जन्म व्रत-पर्याय ही में है। हे नाथ!
ां आपका दर्शन नहीं वह घर किस कामका है? आपके
नसे पवित्र यह संपूर्ण भूमि-तल कल्याणरूप है। हे प्रभो!

इस संसाररूप समुद्रमें भय पाये हुए मनुष्य, देव और तिर्यंच प्राणियोंको आपका समवसरण एक शरण देनेवाले किलेके समान है। आपके चरणोंमें प्रणाम किये बिना अन्य जो कुछ कर्म हैं वे सब कुकर्म हैं। वे इस संसारकी स्थितिके कारणभूत कर्मोंका संचय किया ही करते हैं। आपके ध्यान बिना जो अन्य ध्यान हैं वे सब दुर्ध्यान हैं। उनसे अपनेही तंतुओं द्वारा मकडीकी भांति अपनीही आत्मा फंसजाती है। आपके गुणकी कथा बिना जो कथा है वह सब दुष्ट कथा है, जिससे कि वाणी द्वारा तीतर-पक्षीकी भांति प्राणी विपत्ति सहता है। हे जगद्गुरो! आपके चरण-कमलकी सेवाके प्रभावसे इस संसारका उच्छेद होवे अथवा भवभवमें आपकी भक्ति हुआ करे।

—०—

श्रीमुनिसुव्रतनाथजीकी स्तुति.

हे प्रभो! भ्रमररूपी हमने आज इस अवसर्पिणीकालरूप सरोवरमें कमल समान आपको सौभाग्यवश चिरकालमें भी प्राप्त किया है। हे देव! इस समय आपके स्तोत्रसे, ध्यानसे और पूजादिकसे हमारी वाणी, मन और शरीरने कल्याणकारी फल पाया है। हे नाथ! जैसे २ आपमें मेरी भक्ति विशेष होती जाती है वैसे २ मेरे पूर्व कर्म कम होते जाते हैं। हे स्वामिन् महान् पुण्यका कारण आपका दर्शन जो हमको नहीं हुआ होता तो हम जो कि अविरत हैं उनका जन्म पूर्ण निरर्थक हो जाता

प्रभो ! आपके अंगके स्पर्शसे, आपकी स्तुति करनेसे, निर्माल्य घनेसे, आपके दर्शनसे और आपके गुणगान सुननेसे हमारी ांचों इन्द्रियां कृतार्थ हो गई हैं। वर्षाऋतुके समान आनंद देने- ाले और नीलरत्नके समान कांतिवान् आपसे यह मेरुगिरिका ाखर शोभा देता है। यद्यपि आप मात्र भारतवर्ष ही में हो थापि सर्वत्र व्याप्त हुए जान पडते हो, कारण कि सर्व स्थानमें हनेवाले प्राणियोंके भवकी पीडाका आप नाश करते हो। यहां यवन होते समय भी मुझे आपके चरणोंका स्मरण होवे, कारण क पूर्व जन्मके संस्कारसे भवांतरमें भी वही (स्मरण) मुझे आ करे।

हे जगत्पते ! आपके गुणोंका वर्णन करनेके लिये हमारे ामान मनुष्य भी जो तैयार होते हैं, वह आपके चरण दर्शन ो का प्रभाव है। हे परमेश्वर ! देशनाके समयमें शास्त्ररूप रसको प्रसव करनेवाली आपकी वाणीरूप गायको हम वन्दन रते हैं। जैसे चिकने पदार्थके योगसे पात्र भी चिकना होजाता वैसेही आपके गुणोंको ग्रहण करनेसे मनुष्य तत्काल गुणी ो जाता है। जो अन्य कर्मोंका त्याग करके आपका सदुपदेश ुनते हैं वे क्षणभरमें पूर्वकर्मोंका त्याग कर देते हैं। हे देव ! ापके नामरूप रक्षामंत्रसे संवमित हुए (सही सलामत हुए) स जगतको अब कभी पापरूप पिशाच नहीं लग सकेगा। नाथ ! विश्वको अभयदाता आपके विद्यमान होते हुए अब

श्रीआदिनाथजिन स्तुति.

हे परमेश्वर ! लोक मार्गके करनेवाले, गो काका प्रकट करनेवाले, अनेक कलाओंको प्रकट करनेवाले आपकी जय हो ! हे जगद्गुरो ! कुमति नाशक, ज्ञान नायक और सर्वजीव-प्रकाशक आपको नमस्कार करता हूं। सकलविश्वको ऐश्वर्यके देनेवाले, विश्वके पापका तिरस्कार करनेवाले, अधिकारी और उपकारी ऐसे आपसे यह अखिल विश्व सनाथ है। धर्मके बीज बोनेवाले अतिशय सम्पत्तिको धारण करनेवाले और श्रुतस्कन्धके रचयिता आपको नमस्कार है। कुमार्गसे निवृत्त करनेवाले, मुक्तिमार्गको बतानेवाले और सबको उपदेश करनेवाले ऐसे आपसे अब धर्मोत्पत्ति होगी। नवीन तीर्थकी प्रतिष्ठा करनेवाले, तपसम्पत्तिको आचरनेवाले और जगत्के अधिष्ठाता ऐसे आपके हम दास हैं। हे त्रैलोक्यशरण प्रभो ! मोक्षसुखको देनेवाले

श्रीनेमिनाथजिन स्तुति.

हे मोक्षगामिन् और शिवादेवीकी कुक्षिरूप शुक्तिमें मुक्ता-मणि समान प्रभो ! आप कल्याणके स्थानरूप और कल्याण-कारी हो। मोक्ष जिनके समीप ही में है, समस्त वस्तुएं जिनको प्रकट हैं और जो विविध प्रकारकी ऋद्धिके निधान हैं ऐसे बावीसवें तीर्थंकर ! आपको नमस्कार है। आप चरम-देहधारी जगद्गुरु हो, आपके जन्मसे हरिवंश और इस भरतक्षेत्रकी भूमि पवित्र हो गई है। हे त्रिजगद्गुरो ! आपही कृपाके एक आधार हो, ब्रह्मस्वरूपमें एक स्थान हो और ऐश्वर्यके अद्वितीय आश्रय हो। हे जगत्पते ! आपके दर्शन ही की अति महिमा द्वारा प्राणियोंके मोहका विध्वंस होनेसे आपकी देशना कर्म--सिद्ध होती है, हरिवंशमें अपूर्व मुक्तिसमान हे प्रभो ! आप अकारण त्राता, हेतु विना वत्सल और निमित्त विना नाथ हो। इस समय अपराजित-विमानसे भी भरतक्षेत्र उत्तम है। कारण कि उसमें लोगोंके सुखके हेतु बोधिदाता आपका अवतार हुआ है। हे भगवन्त ! आपके चरण निरन्तर मेरे मानसरूपी मनमें हंसके समान रहें और मेरी वाणी आपके गुणकी स्तवना द्वारा चरितार्थ हो।

हे जगन्नाथ ! अखिलविश्वके उपकारी, आजन्म ब्रह्मचारी, दयावीर और रक्षक प्रभो! आपको मेरा नमस्कार हैं। हे स्वामिन्! चौपन दिवस तक शुक्ल-ध्यानसे आपने घाती-कर्मका क्षय

[illegible]
नमस्कार करता हूं । [illegible]
[illegible]
[illegible] नमस्कार हो । [illegible], [illegible]
करनेवाले, [illegible]
चारित्रधारी आपको मेरा नमस्कार है । [illegible] अतिशयके [illegible]
अति दयावान और सम्पूर्ण [illegible] के कारणभूत हे परमात्मा!
आपको मेरा नमस्कार है । कर्मोंको दूर करनेवाले, करुणाके
क्षीर-सागर, राग द्वेषसे निमुक्त हे मोक्षगामी प्रभो! आपको मे
नमस्कार है । हे नाथ ! जो आपके चरणकी सेवाका फल हो
तो उसके द्वारा आपके ऊपर भवोभवमें मुझे भक्तिभाव प्राप्त हो

हे प्रभो ! सर्वत्र भूत, भविष्य और वर्तमानकालके भावा
प्रकाश करनेवाला आपका यह केवलज्ञान जयवंत है । इस
अपार संसाररूप समुद्रमें प्राणियोंको आप नौकारूप हो तथ
नाविक भी हो । हे जगत्पते ! आजका दिवस हमको सक
दिवसोंमें राजा समान है । कारण कि आज हमको आपके चरण
दर्शनका महोत्सव प्राप्त हुआ है । यह अज्ञानरूप अंधकार
कि मनुष्योंकी विवेक-दृष्टिको लूटनेवाला है वह आपके दर्श
रूप औषधिके रस विना निवृत्त नहीं होता । यह महोत्
नदीके नवीन तटकी भांति प्राणियोंको इस संसारमें से प
उतारनेके लिये एक नवीन तीर्थरूप है । अनन्तचतुष्टयको ि

[दे]नेवाले, सर्वअतिशयोंसे सुशोभित, उदासीनावस्थामें रहनेवाले [औ]र सदा प्रसन्न ऐसे आपको नमस्कार है। प्रत्येक जन्ममें [अ]त्यन्त उपद्रव करनेवाले मेघमाली पर भी आपने करुणा की [थी], अतएव आपकी करुणा कहां नहीं ? (अर्थात् सर्वत्र है.) [हे] प्रभो! कहीं भी रहते व कहीं भी जाते मुझको सदैव आपत्ति-[नि]वारक आपके चरण-कमलका ध्यान रहे।

—०—

श्रीमहावीरजिन स्तुति.

हे अर्हन्त भगवन्त स्वयंबुद्ध विधाता और पुरुषोत्तम [आ]दिकर तीर्थंकररूप ! आपको मैं नमस्कार करता हूं। लोकमें [प्र]दीपरूप, लोकको प्रद्योतके करनेवाले, लोकमें उत्तम, लोगोंके [अ]धीश और लोक-हितकारी ऐसे आपको मैं नमन करता हूं। [पुरु]षोंमें श्रेष्ठ पुंडरीक कमलरूप, सुखके देनेवाले, पुरुषोंमें सिंह [स]मान और मदगंधी गजेन्द्र रूप आपको नमस्कार है। चक्षु व [अ]भयको देनेवाले, बोधिदायक, धर्मदायक, धर्मदेशक और शर-[ण]दायक ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूं। धर्मके सारथी, धर्म-[के] नेता, धर्मके चक्रवर्त्ती, छद्मस्थावस्थाके निवारक और सम्यग् [ज्ञा]नदर्शनधारी आपको नमस्कार है। जिन तथा ज्ञापक, तरे हुए [व] तारनेवाले, कर्मसे मुक्त व मुक्त करनेवाले, तथा बुद्ध व बोध [दे]नेवाले प्रभो ! मैं आपको नमन करता हूं। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, [सर्व] अतिशयोंके पात्र और आठ कर्मका नाश करनेवाले हे स्वामिन्!

आपको नमस्कार है। क्षेत्र, पात्र, तीर्थ, परमात्मा, स्याद्वादवादि
वीतराग और मुनि ऐसे आपको नमस्कार है। पूज्योंके भी पूज
श्रेष्ठ शिरोमणि,आचार्योंके भी आचार्य और ज्येष्ठमें भी ज्येष्ठ आ
नमस्कार है। विश्वको संस्कारिमदशामें करनेवाले, योगियोंके ना
व योगी, पवित्र करनेवाले व पवित्र, अनुत्तर व उत्तर ऐसे आप
नमस्कार है। पापका प्रक्षालन करनेवाले, योगाचार्य, जिन
अन्य कोई विशेष उत्तम नहीं ऐसे अग्र्य, बृहस्पति व मंगल
आपको नमस्कार है। सर्व तरफसे उदितहुए एक वीर सूर्य
और "ॐ भूर्भुवः स्वः" इस वाणीसे स्तुति करनेके योग्य आप
नमस्कार है। सकल जन हितकारी,सर्वार्थको सिद्ध करनेवाले,अ
रूप ब्रह्मचर्यको उदित करनेवाले, आप्त और पारंगत ऐसे आप
नमस्कार है। दाक्षिणीय, निर्विकार, दयालु और वज्रऋषभनारा
शरीरधारी आपको नमस्कार है। त्रिकालज्ञानी, जिनेन्द्र, स्वयं
ज्ञान, बल, वीर्य, तेज, शक्ति और ऐश्वर्यमय आपको नमस्का
है। आदिपुरुष, परमेष्ठी, महेश और ज्योतिस्तत्त्वरूप आप
नमस्कार है। सिद्धार्थ-राजाके कुलरूपी क्षीरसागरमें चन्द्र समा
महावीर, धीर और त्रैलोक्यनाथ आपको नमस्कार है।

हे प्रभो! लावण्यसे पवित्र शरीरवाले और नेत्रको अमृता
जनरूप आपके विषयमें मध्यस्थता रखना भी दोषका कार
है तो द्वेष रखनेकी तो बात ही क्या है? कोपादिकसे उपद्र
पाये हुए भी आपके प्रतिपक्षी हैं क्या ऐसी वार्ता विवेक

ोग कभी करते हैं? कदापि नहीं। आप विरक्त हैं जिससे यदि
ागवान् आपका विपक्षी होजाय तो वह विपक्ष ही नहीं, क्यों
के सूर्यका विपक्षी क्या जुगनू हो सकता है? लवसत्तम (अनु-
त्तरवासी) देवता भी आपके योगकी इच्छा करते हैं परन्तु
ासे पाते नहीं, तो योगमुद्रारहित दूसरोंकी तो बात ही क्या
करना? हे स्वामिन्! हम आपके समान नाथ ही की शरण
अंगीकार करते हैं, आपका स्तवन करते हैं और आप ही की
उपासना करते हैं। आपके सिवाय अन्य कोई त्राता नहीं, अत-
एव कहां जाकर कहें व क्या करें? अपने आचार ही से मलीन
और दूसरेको ठगनेमें तत्पर ऐसे अन्य देवताओंसे यह जगत
ठगाता है। अहा! उसकी पुकार किसके सन्मुख करें? नित्य
मुक्त रहनेवाले होते इस जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और लय
करनेमें उद्यत होनेवाले और इसीसे वंध्या स्त्रीके बालक समान
देवताओंका कौन सचेत पुरुष आश्रय करता है? हे देव!
कितने ही मूर्ख पुरुष उदरपूर्तिके करनेवाले और विषयेन्द्रियोंके
दुराचार करनेवाले देवताओंसे आपके समान देवाधिदेवके
निन्दक बन जाते हैं, यह कैसे खेदकी बात है। अहा! कितनेही
घरमें रहकर गर्जना करनेवाले मिथ्यात्वी यह सम्पूर्ण आकाश-
पुष्पवत् है ऐसी उत्प्रेक्षा करके और उसकी कुछ तो भी प्रमाण
कल्पित करके देह व गेहमें आनन्द मनाते रहते हैं। कामराग
और स्नेहरागका निवारण करना तो सहज है, किन्तु दृष्टि-

राग तो ऐसा महापापी है कि उसका उच्छेदन करना म
रूपोंको भी मुश्किल होता है । हे नाथ ! प्रसन्न मुख, मध्
दृष्टि और लोकको प्रीति उपजानेवाला-वचन यह सब आ
अत्यंत प्रीतिके स्थानरूप होतेहुए मूर्ख लोग वृथा आ
उदास रहते हैं । कभी वायु स्थिर हो जाय, पर्वत पिघल ज
और जल जाज्वल्यमान होजाय, तथापि रागादिकसे ग्रस्त
मनुष्य कदापि आप्त होने योग्य नहीं ।

—०—

श्रीऋषभदेव स्तुति.

त्रैलोक्यमें अद्वितीय नाथ हे प्रभो ! आप सर्वोत्कृ
प्रवृत्त होवें । आप त्रिजगतके लोगोंको उपकार करनेके लि
समर्थ होते भी अनन्तातिशयकी शोभासे सनाथ हो । ना
राजाके विपुल कुलरूप कमलको प्रफुल्लित करने तथा त्रिभुव
लोगोंके स्तवन करने योग्य मनोहर श्री मरुदेवी-माताकी कु
रूप सरोवरको सुशोभित करनेवाले राजहंस हो । त्रैलो
अधिकाधिक लोगोंके मनको शोक रहित करनेको सूर्य स
हो । तथा सकल देवताओंके गर्वको सर्वप्रकारसे दूर क
समर्थ, निर्मल, अतिशय व अद्वितीय महिमा रूप लक्ष्
विलास करनेको कमलाकर (सरोवर) समान हे प्रभो ! आ
जय हो । श्रद्धालुस्वभावसे उत्पन्न, भक्तिरसमें लीन और
प्यमान सेवाके काममें एक २ से अग्रेसर होकर नम

अनन्तउपभोगमय, क्रोधरहित, मानरहित, मायारहित लोभरहित, हास्यरहित, रतिरहित, अरतिरहित, भयरहित शोकरहित, दुर्गुंछारहित, रागरहित, द्वेषरहित, मोहरहित मिथ्यात्वरहित, निद्रारहित, कामरहित, अज्ञानरहित, कंद रहित, रोगरहित, निरालम्बी, आशारहित, निरुपाधि, निर्वि कारी, अनन्तचतुष्टयी, अक्षय, अचल, अकल, अमल, अम अनामी, अकर्मा, अबंधक, अनुदय, अभेदी, अवेदी, अछे अखेदी, असखायी, अलेशी, अनवगाही, अव्यापी, अनाश्र अकंप, अस्खलित, अविरोध, अनाशि, अलख, अशोक, लोक लोकज्ञायक. शुद्ध, बुद्ध, स्वभाव-रमणीय, सहजानंदी, एक, अ मंरुप, अनन्तगुणसे विराजमान ऐसे अनन्तसुख भोगी, त्रैलो क्याधीश, त्रैलोक्य-पति, त्रैलोक्य-स्वामी, त्रैलोक्यनाथ, त्रैलो क्यतिलक, त्रैलोक्यमें मुकुट मुद्रा समान, त्रैलोक्यमें छत्र समान त्रैलोक्यमें सूर्य समान उद्योत करनेवाले, मिथ्यात्व स्वरूप अंध कारके नाशक, चन्द्रमाकी भांति शीतलता करनेवाले, विषय कषायरूप दाहके नाशक, भक्तवत्सल, त्रैलोक्यहितकारी, जग त्रयके प्रीतिकारी, जगत्रयके उपकारी, करुणासागर, भवसमुद्र पार उतारनेवाले, तथा अष्ट प्रातिहार्यकी संपदासे विराजमान पूजातिशय वचनातिशय ज्ञानातिशय और अपायापगमातिशय मिलाकर बारह अतिशयोंसे शोभित, वैसेही जन्मसे चार, कर्म क्षयसे ग्यारह तथा देवताकृत उन्नीस मिलकर चौंतीस अतिशय

वेराजमान ऐसे श्री वीतराग-देव भव्य प्राणियोंको हितोप-
करते मिथ्यात्वरूप अंधकारका नाश करते हुए विचरते थे
हर्ष, भक्तिसे भाविक हुए भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, और
निक, इन चार निकायके देवताओंने मिलकर सुवर्ण तथा
-मणि मय तीन गढोंकी रचना की। उसके मध्यमें रत्नजडित
ासन पर स्वयं भगवान् विराजमान हुए। मस्तक पर तीन
शोभते हैं, चार चामर ढुल रहे हैं. ऐसे सुर, असुर, मनुष्य,
ाधर, किन्नर, गन्धर्व इत्यादिककी पर्षदाको देशना देने
वीतराग भगवानको हमारा परम श्रद्धापूर्वक नमस्कार है.]

श्रीचतुर्विंशतिजिन स्तुतियोंका अर्थ

अथ जिनदेशनासंग्रह.
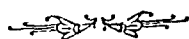
श्रीऋषभदेवभगवानकी देशना.

आधि, व्याधि, जरा और मृत्युरूपी सैकडों ज्व
आकुल यह संसार सर्व प्राणियोंको देदीप्यमान अग्निके स
है; जिससे उसमें विद्वानोंने लेशमात्र भी प्रमाद करना यु
नहीं; क्योंकि रात्रिमें उल्लंघन करनेके योग्य मरुदेशमें अ
होते हुए भी कौन प्रमाद करता है? अनेक जीवयोनीरूप
वर्तसे आकुल, संसारसमुद्रमें गोते खाते हुए जन्तुओंको
रत्नकी भांति यह मनुष्यजन्म प्राप्त होना दुर्लभ है। दोहद क
से जैसे वृक्ष फलयुक्त होते हैं, वैसे ही परलोकका सा
करनेसे प्राणियोंका मनुष्यजन्म सफल होता है। इस संस
शठ लोगोंकी वाणीकी भांति प्रथम मधुर और परिणाममें
दारुण विषम, विश्वको ठगनेवाले हैं। अधिक ऊंचा चढ
अन्त जैसे गिरना है, वैसे ही संसार स्थित सर्वपदा
संयोगका अन्त वियोग है। इस संसारमें पारस्परिक स्प
भांति प्राणियोंका आयुष्य, धन और यौवन ये सब ना
और शीघ्रगामी हैं। मरुदेशमें जैसे स्वादिष्ट जल नहीं
वैसे संसारकी चारों गतियोंमें कदापि सुखका लेशमात्र भी

दोपसे दुःख पाते हुए व परमाधार्मिकों द्वारा क्लेश पहुंचाये
नारकियोंको तो सुख होवे ही कहां से ? शीत, वात, आ-
व जलसे तथा वध, बन्धन और क्षुधा आदिसे विविध
ारसे पीडित होते हुए तिर्यंचोंको भी क्या सुख है ? गर्भ-
, व्याधि, जरा, दारिद्र्य और मृत्युसे होनेवाले दुःखसे आलि-
हुए मनुष्योंको भी कहां सुख है ? परस्पर मत्सर, क्रोध,
ह, तथा च्यवन आदि दुःखोंसे देवताओंको भी सुखका
नहीं; तथापि जल जैसे नीची भूमिकी तरफ जाता है वैसे
ी अज्ञानसे वारम्वार इस संसारकी तरफ चलते हैं। इस लिये
ातन्यवान् भविजनो! दूधसे सर्पका पोषण करनेकी भांति तुम
े मनुष्य जन्मसे संसारका पोषण मत करो। हे विवेकियों!
संसार निवाससे उत्पन्न होनेवाले अनेक दुःखोंका विचार
क सर्वप्रकारसे मोक्षके लिये यत्न करो। नर्कके दुःख समान
ासका दुःख संसारकी भांति मोक्षमें कभी भी प्राप्त नहीं
ा। कुंभी (नर्क) के मध्यमेंसे खिंचाते हुए नारकी जीवोंकी
कि समान प्रसव वेदना मोक्षमें कभी भी प्राप्त नहीं होती।
र व अन्दर डाले हुए शल्य समान और पीडाके कारणरूप
धि-व्याधियां वहां नहीं। यमराजकी अग्रदूती सर्वप्रकारके
ो चोरनेवाली तथा पराधीनताको उत्पन्न करनेवाली जरा
वहां सर्वथा नहीं है। तथा नारकी, तिर्यंच, मनुष्य तथा
ाओंकी भांति पुनः भवभ्रमणका कारणरूप मरण भी

भोगनेवाले प्राणीको प्राप्त होता है। सातों प्रकृतिको क्षीण
[illegible]वाले और शुभ भाववाले प्राणीको क्षायिक नामक पांचवा
[illegible]कित प्राप्त होता है॥ समकितदर्शनगुण रोचक, दीपक
[illegible] कारक इन नामोंसे तीन प्रकारका है। उसमें शास्त्रोक्त तत्त्व-
[illegible]हेतु और उदाहरण बिना भी जो दृढप्रतीति उत्पन्न होती है
रोचक समकित है। जो दूसरोंको समकित प्रदीप्त करे वह
[illegible]पक समकित और जो संयम तथा तप आदिको उत्पन्न करे
कारक-समकित कहलाता है। यह समकित शम, संवेग,
[illegible]वेद, अनुकंपा और आस्तिक्य इन पांच लक्षणोंसे भलीभांति
[illegible]चाना जाता है। अनन्तानुबंधी कषायका उदय न हो वह शम
[illegible]लाता है अथवा सम्यक्-प्रकृतिसे कषायके परिणामको देखना
शम कहलाता है। कर्मके परिणाम और संसारकी असारताका
[illegible]न्तवन करते पुरुषको जो वैराग्य उत्पन्न होता है वह संवेग
[illegible]लाता है। संवेगवाले पुरुषको संसारवास कारागृह है, और स्वजन
[illegible]धन समान है, ऐसा जो विचार हुआ करे वह निर्वेद कह-
[illegible]ता है। एकेन्द्रिय आदि सर्व प्राणियोंको संसार-सागरमें डूबने-
होनेवाले क्लेशको देखकर हृदयमें आर्द्रता, उनके दुःखसे दुःख
[illegible]र उस दुःखके निवारणके उपायमें यथाशक्ति प्रवृत्ति करना
[illegible] अनुकंपा कहलाती है। दूसरे तत्त्व सुनते हुए भी आर्हत् तत्त्व-
कांक्षा रहित प्रतिपत्ति रहना वह आस्तिक्य कहलाता है।
[illegible] प्रकार सम्यग्दर्शनका वर्णन किया हुआ है, उसकी [illegible]क्षण-

समकित मूल पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षा-
स प्रकार गृहस्थोंके बारह व्रत हैं। बुद्धिमान पुरुषने पंगु,
कुबडापन आदि हिंसाके फल देख कर निरपराधी त्रस-
की हिंसा संकल्पसे छोड देनी चाहिये १ हकलाना, आजारी,
न और मुखरोग ये असत्यके फल देखकर, कन्याअलिक
पांच बडे असत्य छोडदेना; कन्या, गाय और भूमि सम्बंधी
ा, धरोहर दबालेना, झूठी साक्षी भरना ये पांचों स्थूल
ा कहलाते हैं. २। दुर्भाग्य, दूतपन, दासत्व, अंगछेद और दरि-
ये अदत्तादानके फल जानकर स्थूल चौर्यका त्याग करना ३।
त्व और इन्द्रियछेद यह अब्रह्मचर्यका फल जानकर सद्-
न्त पुरुषने स्वस्त्रीमें संतुष्ट होना या परस्त्रीका त्याग करना
संतोष, अविश्वास, आरंभ और दुःख ये सर्व परिग्रहकी मूर्छा
। के फल जानकर परिग्रहका प्रमाण करना. (ये पांच अणु-
कहलाते हैं) ५। दशों दिशाओंमें निश्चितसीमाका उल्लंघन न
, यह दिग्विरति नामक प्रथम गुणव्रत कहलाता है ६। जिसमें
र्वक भोगउपभोगकी संख्या की जाय वह भोगोपभोगपरि-
नामक दूसरा गुणव्रत कहलाता है. ७। आर्त्त, रौद्र ये दो अप-
, पाप कर्मका उपदेश, हिंसक अधिकरणोंका देना तथा प्रमा-
ण इन चार प्रकारसे अनर्थ-दंड कहलाता है; शरीरादि-
दंडके प्रतिपाक्षित्वमें रहनेवाले अनर्थदंडका त्याग करना, वह
ा गुणव्रत कहलाता है. ८। आर्त्त और रौद्रध्यानका त्याग करके

वाला होनेसे दो प्रकारका है। आप्तपुरुषोंने मोहनीय कर्मको मदिरापानके समान कहा है, कारण कि उस कर्मके उदयसे मोह प्राप्त हुई आत्मा कृत्याकृत्यको नहीं समझ सकती; उसमें मिथ्यादृष्टिपनके विपाकको करनेवाला दर्शनमोहनीय कर्म कहलाता है और विरतिको प्रतिबंध करनेवाला चारित्रमोहनीय कर्म कहलाता है। मनुष्य, तिर्यंच, नारकी और देवताके भेदसे आयुष्य कर्म चार प्रकारका है, वह प्राणियोंको अपने २ भवमें बन्दीगृहकी भांति रोक रखनेवाला है। गति, जाति आदि विचित्रताको करनेवाला नामकर्म चित्रकारके समान है, इसका विपाक प्राणियोंको शरीरमें प्राप्त होता है। उच्च और नीच ऐसा दो प्रकारका गोत्रकर्म उच्च नीच गोत्रको प्राप्त करानेवाला है, वह क्षीरपात्र और मदिरापात्रके भेद करनेवाले कुंभारके समान है। जिससे बाधित हुए दानादि नहीं होते, वह अंतरायकर्म भंडारीके समान है. इस प्रकार मूल प्रकृतियों के विविध प्रकारके विपाकका चिन्तवन करना "विपाक विचय" धर्मध्यान है। इस अनादि, अनन्त लोककी स्थिती, उत्पत्ति लय और आकृतिका जिसमें चिन्तवन किया जाता है उसे 'संस्थान विचय धर्मध्यान' कहते हैं। यह लोक कमरपर हाथ रखेहुए और पग चौडे करके खडेहुए पुरुषकी आकृतिके समान है। और वह स्थिती, उत्पत्ति और नाश रूप पर्यायोंवाले द्रव्यसे भरा हुआ है। यह नीचेसे वेत्रासनके समान है, मध्यमें झालरके समान है

लाख, पांचवींमें तीनलाख, छट्ठीमें पांच कम एकलाख
सातवीं नरकभूमिमें पांच नरकावास हैं। इन सातों भूमि
प्रत्येकके नीचे मध्यमें वीसहजार योजन मुटाईमें घनोदधि है।
घनोदधिके नीचे मध्यमें असंख्य योजन पर्यंत घनवात
स्थित है. घनवातके नीचे असंख्य योजन पर्यंत तनुवात
और तनुवातसे असंख्य योजन आकाश है. ये मध्यकी मोटाई
क्रमशः कम होते२ घनोदधि आदिके अन्तमें कंकणके आकार
धारण किये हुए हैं। रत्नप्रभा भूमिके प्रान्त भागमें (अंतिमभाग
परिधिकी भांति फिरते गोलाकार स्थित घनोदधिका वि
छः योजनका है। उसके आसपास महावातका मंडल साढे
योजन है. उसको घेरे हुए तनुवातका मंडल डेढ योजन
इस प्रकार रत्नप्रभाको घेरे हुए मंडलके मानके उपरांत शर्करा
प्रभा भूमिको घेरे हुए घनोदधिमें योजनका तीसरा भाग
अधिक है. घनवातमें एक कोस अधिक है. और एक कोसका
तीसरा भाग तनुवातमें अधिक है। शर्कराप्रभाके वलयके मान
उपरान्त तीसरी भूमिके चारों ओरके मंडलमें भी इसी प्रमाण
वृद्धि होती है। इस प्रकार पूर्वके वलयके मानसे बादके वलय
प्रमाणमें सातवीं भूमिके वलय तक अधिकता होती है. वे
घनोदधि, महावात और तनुवात मंडल ऊंचाईमें अपनी
पृथ्वीकी ऊंचाइके समानही है. इस प्रकार ये सात पृथ्वियां
घनोदधिआदिसे धारण कीहुई हैं, और उसीमें पाप-कर्मके

नेके स्थानकरूप नरकावास स्थित है. इस नरक भूमिमें ज्यों२
जावें त्यों २ यातना, रोग, शरीर, आयुष्य, लेश्या, दुःख
भयादिक क्रमशः अधिकाधिक हैं. यह निश्चय समझो.

रत्नप्रभा भूमि एकलाख अस्सीहजार योजन मोटी है,
में से एक २ हजार योजन ऊपर व नीचे छोड देते शेष रहे
भागमें भवनपतियोंके भवन हैं. वे दक्षिण और उत्तर दिशा-
से राजमार्गमें मकानोंकी पंक्तियां होवें वैसे पंक्तिवंध स्थित
नोंमें रहते हैं। उनमें मुकुटमणिके चिन्हवाले असुरकुमार
पाति हैं, फणके चिन्हवाले नागकुमार हैं, वज्रके चिन्हवाले
तकुमार हैं, गरुडके चिन्हवाले स्वर्णकुमार हैं, घटके चिन्ह-
अग्निकुमार हैं, अश्वके चिन्हवाले वायुकुमार हैं. वर्धमानके
हवाले स्तानितकुमार हैं, मकरके चिह्नवाले उदधिकुमार हैं,
री-सिंहके चिन्हवाले द्वीपकुमार हैं और हाथीके चिन्हवाले
ा-कुमार हैं। उनमें असुरकुमारोंके चमर और वली नामक
इन्द्र हैं, नागकुमारोंके धरण और भूतानन्द नामक दो इंद्र
विद्युत्कुमारोंके हरि व हरिस्सह नामक दो इन्द्र हैं, सुवर्ण-
रोंके वेणुदेव और वेणुदाली नामक दो इन्द्र हैं, अग्नि-
रोंके अग्निशिख और अग्निमाणव नामक दो इन्द्र हैं,
कुमारोंके वेलम्ब और प्रभंजन नामक दो इन्द्र हैं, स्तनित
रोंके सुघोप और महाघोप नामक दो इन्द्र हैं, उदधि-
रोंके जलकान्त और जलप्रभ नामक दो इन्द्र हैं, द्वीप-

कुमारोंके पूर्ण और वशिष्ट नामक दो इन्द्र हैं, और
कुमारोंके अमित व अमितवाहन नामक दो इन्द्र हैं।

रत्नप्रभा भूमिके ऊपर छोड दिये हुए एक हजार
ऊपर और नीचे सौ २ योजन छोडकर मध्यके आठसौ
में दक्षिणोत्तर श्रेणीके अन्दर आठ प्रकारके व्यन्तरोंकी
वसती है। उनमें पिशाच-व्यन्तर कदंबवृक्षके चि
हैं, भूत--व्यन्तर सुलस वृक्षके चिन्हवाले हैं। यक्ष-
वटवृक्षके चिन्हवाले हैं, राक्षस-व्यन्तर खट्वांग (
के चिन्हवाले हैं, किन्नरव्यंतर अशोकवृक्षके चिन्हवा
किंपुरुष-व्यन्तर चंपकवृक्षके चिन्हवाले हैं, महोरगव्यन्तर
ड्डवृक्षके चिन्हवाले हैं और गंधर्वव्यन्तर तुंबरुवृक्षके
हैं। पिशाच व्यन्तरोंके काल व महाकाल नामक इन्द्र
व्यन्तरोंके सुरूप व प्रतिरूप नामक इन्द्र हैं, यक्षव्यन्त
भद्र और माणिभद्र नामक इन्द्र हैं, राक्षसव्यन्तरोंके
महाभीम नामक इन्द्र हैं, किन्नरव्यन्तरोंके किन्नर औ
नामक इन्द्र हैं, किंपुरुष व्यन्तरोंके सत्पुरुष और महापुरुष
इन्द्र हैं, महोरगव्यन्तरोंके अतिकाय और महाकाय
इन्द्र हैं और गंधर्वव्यन्तरोंके गीतरति और गीतयशा
इन्द्र हैं; इस प्रकार व्यंतरोंके सोलह इन्द्र हैं.

रत्नप्रभा भूमिके छोड दिये हुए सौ योजनमें से
नीचे दस २ योजन छोडते शेष रहे हुए मध्यके अस्सी

रोंकी दूसरी आठ निकायें रहती हैं उनके नाम ये हैं:—
सि, पंचप्रज्ञप्ति, ऋषिवादित, भूतवादित, कंदित, महाकं-
कूष्मांड और पचक. इन प्रत्येकके दो २ इन्द्र हैं. उनके
क्रमशः सन्निहित व समान, धातृ और विधातृक, ऋषि
ऋषिपाल, ईश्वर और महेश्वर, सुवत्सक और विशाल, हास
हासरति, श्वेत और महाश्वेत तथा पचन और पचका-
हैं।

रत्नप्रभाके तल पर दशकम आठसौ योजन जावें तब
तिष्क मंडल आता है. प्रथम तारे हैं, उनके ऊपर दश यो-
र सूर्य है, सूर्यसे अस्सी योजन ऊपर चंद्र है, उसके बीस
। ऊपर ग्रह स्थित हैं, इस प्रकार एक सौ दस योजन चौडा-
योतिर्लोक है। जम्बूद्वीपके मध्यमें मेरुपर्वतसे ग्यारहसौ एक-
योजन दूर, मेरुको स्पर्श न करतेहुए मंडलाकारसे सर्व
ओंमें व्याप्त होकर ज्योतिपचक्र घूमा करता है. केवल एक
। तारा निश्चल है. वह ज्योतिपचक्र लोकके अन्त भागसे
इसौ ग्यारह योजन अंदर रहकर लोकान्तको स्पर्श न करता
मंडलाकारमें है। नक्षत्रोंमें सबके ऊपर स्वाति नक्षत्र है और
नीचे भरणी-नक्षत्र है. सबसे दक्षिणमें मूल नक्षत्र है और
उत्तरमें अभिजित-नक्षत्र है। इस जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र और
र्य हैं. लवणोदधिमें चार चन्द्र और चार सूर्य हैं. धातकीखंडमें
चन्द्र और बारह सूर्य हैं कालोदधिमें बयालीस चंद्र और

बयालीस सूर्य हैं. पुष्करार्द्धमें बहत्तर चन्द्र और बहत्तर सूर्य
इस प्रकार अढाईद्वीपमें एकसौ बत्तीस चन्द्र और एकसौ
सूर्य हैं। उनमेंके प्रत्येक चन्द्रको अठ्यासी ग्रह, अट्ठावीस न
और छासठहजार नौसौ पचहत्तर कोटाकोटि ताराओंका परि
है। चंद्रका विमान विस्तारमें और लम्बाईमें एक योजनके
भाग करके वैसे छप्पन भागके बराबर है. ($\frac{56}{61}$ योजन)
का विमान वैसे अडतालीस अंशका लंबा चौडा है. ग्रहोंके
मान अर्द्ध-योजनके हैं. और नक्षत्रोंके विमान एक २ कोसके
सबसे उत्कृष्ट आयुष्यवाले तारेका विमान आधे कोसका है,
सबसे जघन्य आयुष्यवाले तारेका विमान पांचसौ धनुष्यक
ये विमान ऊंचाई में मर्त्यक्षेत्रके ऊपरके भागमें पैंतालीस
योजन में सर्वत्र लंबाई से आधे प्रमाण में हैं। उन सर्व विम
के नीचे पूर्व तरफ सिंह हैं दक्षिण तरफ हाथी हैं पश्चिम
वृषभ हैं और उत्तर तरफ अश्व हैं। वे चन्द्रादिकके वि
के वाहन हैं। जिनमें चन्द्रके वाहनभूत सोलह हजार
योगिक देवता हैं ग्रह के आठ हजार हैं नक्षत्र के चार हजार
हैं और तारा के दो हजार आभियोगिक देवता हैं। अपने स्व
ही से गति करनेवाले चन्द्रादिकके विमानके नीचे वे आभि
योग्य कर्म द्वारा निरन्तर वाहनरूप होकर रहते हैं।

मानुषोत्तर पर्वतके बाहर पचास २ हजार योजनसे परस
ांतरित हुए सूर्य और चन्द्र स्थिररूपसे स्थित हैं। उनके विम

मनुष्यक्षेत्र सम्बन्धी चन्द्र सूर्यके मानसे आधे प्रमाण-
के हैं. क्रमशः द्वीपोंकी परिधिकी वृद्धिसे उनकी संख्या
भी जाती है. उत्तम लेश्यावाले और ग्रह नक्षत्र तथा ताराओं-
परिवारित असंख्य सूर्य और चंद्र घंटेके आकारसे मनोहर
तेसे स्थित हैं, और ये स्वयंभूरमण-समुद्रकी मर्यादा बांधकर
। २ योजनके अंतरसे अपनी २ पंक्तियोंमें हमेशा स्थित हैं.

मध्य-लोकमें जम्बूद्वीप और लवण समुद्र आदि उत्तमोत्तम
मवाले असंख्य द्वीप और समुद्र एक दूसरेसे द्विगुण २ विस्तार-
स्थित हैं। प्रथम २ द्वीपोंको समुद्रके घेरे रहनेसे वे गोलाकार
उनमें अन्तिम स्वयंभू नामक महोदधि है। जम्बूद्वीपके म-
में सुवर्णके थालके समान गोलाकारसे मेरुपर्वत स्थित है.
पृथ्वीतलके नीचे एक हजार योजन भूमिमें गहरा है, और
न्यानवे हजार योजन ऊंचा है, दश हजार योजन पृथ्वीतल
उसका विस्तार है और ऊपर उसका विस्तार एक हजार यो-
। है। तीन लोकसे और तीन कांडसे वह पर्वत विभक्त है,
का प्रथम कांड (भाग) शुद्धपृथ्वी, पाषाण, हीरे व शर्क-
ा भरपूर है. उसका प्रमाण एक हजार योजन है. दूसरा कांड
ठ हजार योजन पर्यन्त उत्तम चांदी, स्फटिक, अंकरत्न और
णसे भरपूर है. तीसरा कांड छत्तीस हजार योजनका है, वह
र्ण शिलामय है, और उसके ऊपर चालीस योजन ऊंचा वै-
रत्नका शिखर है. मूलमें उसका विस्तार बारह योजन है.

मध्यमें आठ योजन है और ऊपर चार योजन है. मेरुपर्वतके तल
में भद्रशाल नामक वन चारों ओर स्थित है. भद्रशाल वन
पांचसौ योजन ऊंचे जाने पर मेरुपर्वतकी प्रथम मेखला पर
चसौ योजन गोलाकार विस्तारवाला नंदनवन है। उसके
साढे बासठ हजार योजन जाने पर दूसरी मेखलाके ऊपर
ही प्रमाणका सौमनस नामक वन है। सौमनससे छत्तीस हजार
योजन जावें तब तीसरी मेखलाके ऊपर मेरुके मस्तक पर पांडु
नामक सुन्दर वन स्थित है. इसका विस्तार शिखरके चारों ओर
गोलाकारमें चारसौ चौरानवे योजनका है।

इस जम्बूद्वीपमें सात खंड हैं. उनके नाम क्रमशः भरत,
हैमवन्त, हरिवर्ष, महाविदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरवत।
दक्षिण और उत्तरमें इन क्षेत्रोंको पृथक् करनेवाले हिमवान, म
हिमवान, निषध, नीलवन्त, रुक्मी और शिखरी नामक वा
पर्वत हैं। वे मूलमें तथा शिखर पर समान विस्तारसे युक्त
हैं, जिनमें प्रथम पृथ्वीके अन्दर पचीस योजन गहरा सुवर्ण
हिमवन्त नामक पर्वत है. वह सौ योजन ऊंचा है. दूसरा मह
हिमवान पर्वत गहराई व ऊंचाईमें उससे दुगना है. और व
अर्जुनजातिके सुवर्णका है। उससे द्विगुण प्रमाणवाला तीसरा
निषध पर्वत है, वह सुवर्णके समान वर्णवाला है। चौथा नील
पर्वत प्रमाण में निषधके समान है और वह वैडूर्यमणिका है;
पांचवां रुक्मी-पर्वत रौप्यमय है और प्रमाणमें महाहिमवान

मान है। छट्ठा शिखरी-पर्वत सुवर्णमय है और प्रमाणमें हिम-वन्तके तुल्य है। ये सब पर्वत पार्श्वभागमें विविध प्रकार की मणियोंसे सुशोभित हैं। क्षुद्र हिमवन्त पर्वतके ऊपर एक हजार योजन लम्बा और पांचसौ योजन चौड़ा पद्म नामक एक विशाल सरोवर है, महाहिमवन्त पर्वत पर महापद्म नामक सरोवर है. जो पद्मसरोवरसे द्विगुण विस्तारमें है. उससे द्विगुण निषध-पर्वत पर तिगिंछि नामक सरोवर है. उसीके समान नीलवंत गिरि के ऊपर केसरी नामक सरोवर है, रुक्मी—पर्वत के ऊपर महापद्म सरोवरके समान महापुंडरीक-सरोवर है और शिखरी पर्वतके ऊपर पद्मसरोवर के समान पुंडरीक-सरोवर स्थित है। इन पद्मादिसरोवरोंमें दस योजन गहरे विकसित कमल स्थित हैं. इन छः सरोवरोंमें क्रमशः पल्योपम आयुष्यवाली श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामक देवियां निवास करती हैं. ये देवियां सामानिक देव, तीन पर्षदाके देव, आत्मरक्षक और अन्य देव सहित हैं।

भरतक्षेत्रमें गंगा और सिन्धु नामक दो बड़ी२ नदियां हैं. हैमवन्त-क्षेत्र में रोहिता और रोहितांशा नामक दो नदियां हैं. हरिवर्ष-क्षेत्र में हरिसलिला और हरिकान्ता नामक दो नदियां हैं, महाविदेह-क्षेत्रमें सीता और सीतोदा नामक दो बड़ी२ नदियां हैं. रम्यक—क्षेत्र में नरकान्ता और नारीकान्ता नामक दो नदियां हैं. हैरण्यवन्त-क्षेत्रमें स्वर्णकूला और रौप्य-

। पर चौडे हैं. तथा ऊपरका विस्तार पांचसौ योजन है। मेरु-
त्तरमें और नीलवन्तागिरिसे दक्षिणमें गंधमादन और माल्य-
नामक दो हस्तिदन्ताकार पर्वत हैं। उन दोनों पर्वतों के
र सीतानदीसे भिन्न हुए पांच सरोवर हैं। उनके दोनों
भी दश २ करके सौ सुवर्ण पर्वत हैं। इससे उत्तरकुरुक्षेत्र
ही रमणीक लगता है। सीतानदीके दोनों तट पर यमक
क दो सुवर्णके पर्वत हैं, वे चित्रकूट और विचित्रकूट ही के
न प्रमाणवाले हैं। देवकुरु और उत्तरकुरुके पूर्वमें पूर्वविदेह
ार पश्चिममें अपरविदेह हैं. वे परस्पर क्षेत्रान्तरकी भांति
त हैं। उन दोनों विभागोंमें परस्पर संचार रहित और नदि-
तथा पर्वतोंसे विभाजित चक्रवर्तीके विजय करने योग्य सोल-
विजय हैं. पूर्व महाविदेहमें कच्छ, महाकच्छ, सुकच्छ, कच्छ-
आवर्त्त, मंगलावर्त्त, पुष्कल और पुष्कलावती ये आठ विजय
की ओर हैं, और वत्स, सुवत्स, महावत्स, रम्यवान्, रम्य,
क, रमणीय और मंगलावती ये आठ विजय दक्षिण ओर हैं।
म-महाविदेहमें पद्म, महापद्म, सुपद्म, पद्मावती, शंख, कुमुद,
न और नलिनावती ये आठ विजय दक्षिणमें और वप्र, सु-
महावप्र, वप्रावती, वल्गु, सुवल्गु, गंधिला और गंधिलावती
ाठ विजय उत्तरमें हैं। भरतखंडके मध्यमें दाक्षिणार्द्ध और
ार्द्धको पृथक् करनेवाला वैताढ्यपर्वत स्थित है. वह पूर्व व
ममें समुद्रपर्यंत विस्तारमें है। पृथ्वीमें छ योजन और एक

कोस गहरा है, विस्तारमें पचास योजन और पचीस योजन ऊंचा है। पृथ्वीसे दश योजन ऊपर जावें तब उस पर दक्षिण-उत्तरमें दश-दश योजन विस्तारवाली विद्याधरोंकी दो श्रेणियां हैं। दक्षिणश्रेणीमें विद्याधरोंके राष्ट्रसहित पचास नगर हैं और उत्तर-श्रेणीमें साठ नगर हैं। इन विद्याधरोंकी श्रेणियोंके दश योजन ऊपर जावें तब उतने ही विस्तारवाली दोनों ओर व्यंतरोंके निवासकी श्रेणियां हैं। उन व्यंतरोंकी श्रेणियोंके ऊपर पांच योजन जावें तब उसके ऊपरके नव शिखर हैं। इसी प्रकार ऐरावत क्षेत्रमें भी वैताढ्य है।

जम्बूद्वीपके चारों ओर किलेके रूपमें आठ योजन ऊंची वज्रमय जगती है, वह मूलमें बारह योजन चौडी है, मध्यभाग में आठ योजन है और ऊपर चार योजन है। उसके ऊपर दो कोस ऊंचा जाल-कटक है, वह विद्याधरोंकी अद्वितीय मनोहर क्रीडा-स्थान है। इसके ऊपर देवताओंकी भोगभूमिरूप 'पद्मवर' नामक एक सुन्दरवेदिका है। उक्त जगति (परकोटा) में पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः विजय, वैजयंत जयंत और अपराजित नामके चार द्वार हैं।

क्षुद्रहिमवान और महाहिमवानपर्वतके मध्यमें (हिमवत क्षेत्रमें) शब्दापाती नामक वृत्तवैताढ्य-पर्वत है। शिखरी और रुक्मीपर्वतके बीचमें विकटापाती नामक वृत्तवैताढ्य-पर्वत है। महाहिमवान् और निषधपर्वतके मध्यमें गंधापाती नामक

यपर्वत है और नीलवन्त तथा रुक्मी-पर्वतके बीचमें माल्य-
नामक वृत्तवैताढ्यपर्वत है। ये समस्त वैताढ्य-पर्वत प्यालेके
र आकृतिवाले हैं। जम्बूद्वीपके चारों ओर लवण-समुद्र है।
स्तारमें जम्बुद्वीपसे दुगुना है, मध्यमें एक हजार योजन गहरा
नों तरफकी जगतिसे उतरते २ पञ्चानवे २ हजार योजन
यहां तक गहराईमें और ऊंचाईमें उसका जल अधिक है।
में दश-हजार योजन तक सोलहहजार योजन ऊंची समुद्रकी
की शिखा है। उसके ऊपर एक दिनमें दो वक्त दो कोस
ची जलधारा चढती है। लवण-समुद्रके मध्यमें पूर्वादि दि-
क्रमसे वडवामुख, केयूप, यूप और ईश्वर नामक विशाल
के समान आकृतिवाले चार पातालकलश हैं। ये मध्यमें
एकलाख योजन चौडे हैं और एकलाख योजन गहरे हैं।
ठीकरी एकहजार योजन मोटी वज्ररत्नकी है. ये नीचे और
दशहजार योजन चौडे हैं. उनमें तृतीयांश वायु है. शेष
शोंमें जल है। और ये किनारे रहित बडे मटकेके समान
रके हैं। उन कलशोंमें काल, महाकाल, वेलंब और प्रभंजन
देवता हैं ये अनुक्रमसे अपने २ क्रीडावासमें रहते हैं. उन
पाताल-कलशोंके अन्तरमें सातहजार आठसौ चौरासी छोटे २
हैं. ये एकहजार योजन भूमिमें गहरे तथा पेटमें चौडे हैं.
ठीकरी दश योजन मोटी है, और वे ऊपर तथा नीचे
योजन चौडे हैं और वायुसे उनके मिश्रभागका वायुमि-

और इनोंके आश्रयरूप द्वीप हैं, तथा उनद्वीपके ऊपर उनके
र हैं. वह लवण-समुद्र लवण-रसयुक्त जलवाला है।

लवण-समुद्रके चारों ओर उससे द्विगुण चौड़ा धातकी-
नामक दूसरा द्वीप है। जम्बूद्वीपमें जितने मेरुपर्वत, क्षेत्र
र्षधर-पर्वत हैं, उनसे दूने उन्हीं नामोंके धातकीखंडमें हैं।
न्तामें उत्तर और दक्षिणमें धातकीखंडकी चौड़ाईके अनु-
दो इषुकार पर्वत हैं। उनसे विभाजित किये हुए पूर्वार्द्ध व
र्द्धमें जम्बूद्वीपके समान संख्यावाले क्षेत्र और पर्वत हैं। ये
कीखंडमें चक्रके आरेके समान आकारवाले और निषधपर्वत-
मान ऊँचे तथा कालोदधि और लवण-समुद्रको छूते हुए
षपर्वत तथा इषुकार-पर्वत हैं और आरेके अन्तरके समान
स्थित हैं। धातकीखंड-द्वीपके चारों ओर कालोदधि नामक
है। उसका विस्तार आठलाख योजन है. उसके चारों ओर
ही प्रमाणवाला पुष्करवर द्वीपार्द्ध है। धातकीखंडमें इषुकार-
सहित मेरु आदिकी संख्याके सम्बन्धमें जो नियम कहा
है, वही नियम पुष्करार्द्धमें भी है. और क्षेत्रादिकके प्रमाण-
नियम धातकीखंडके क्षेत्रादिकके विभागसे दुगुना है। धात-
ड व पुष्करार्द्धमें मिलकर चार छोटे मेरुपर्वत हैं। ये जम्बूद्वीप-
रुसे पन्द्रहहजार योजन कम ऊंचे और छःसौ योजन कम
ारवाले हैं। उनका प्रथम कांड महामेरु ही के समान है.
ा कांड सातहजार योजन कम और तीसरा कांड आठहजार

योजन कम है। उसमें भद्रशाल और नन्दनवन मुख्य मेरु
के प्रमाणसे हैं। नन्दनवनसे साढेपचपनहजार योजन जाने
पांचसौ योजन विशाल सौमनस नामक वन है। इसके ऊपर
अट्ठावीसहजार योजन जाते पांडुकवन है। वह मध्यकी चूलिका
के आसपास चारसौ चौरानवे योजन विस्तारमें है। उसका ऊपर
नीचेका विष्कम्भ, अवगाहना तथा चूलिका (शिखर) मुख्य
मेरु ही के समान प्रमाणवाले हैं। इस प्रकार मनुष्य-क्षेत्रमें अढाई
द्वीप, दो समुद्र, पैंतीस क्षेत्र, पांच मेरु, तीस वर्षधर-पर्वत
पांच देवकुरु, पांच उत्तरकुरु और एकसौ साठ विजय हैं। पुष्क
रार्द्धद्वीपके चारों ओर मानुषोत्तर नामक पर्वत है। वह मनुष्य
लोकके बाहर शहरकोटके समान वर्त्तुलाकार है। वह सुवर्ण
है और शेष पुष्करार्द्ध में सत्रहसौ इकवीस योजन ऊंचा है। चार
तीस योजन पृथ्वीके अन्दर है और नीचे एकहजार बावी
योजन, मध्य-भागमें सातसौ तेवीस योजन तथा ऊपर चार
चौवीस योजन विस्तारमें है। उस मानुषोत्तर-पर्वतके बाहर म
ष्योंका जन्म-मरण नहीं होता. उसके बाहर गये हुए चार
मुनि आदि भी बाहर मृत्युको प्राप्त नहीं होते इसीसे उस
नाम मानुषोत्तर है। इसके बाहरकी भूमि पर बादराग्नि,
विद्युत, नदी और काल आदि नहीं हैं। इस मानुषोत्तरपर्व
अन्दरकी ओर छप्पनअन्तरद्वीप और पैंतीसक्षेत्र हैं। उन्हीं
मनुष्य उत्पन्न होते हैं। परन्तु किसीके संहरण करनेसे, वि

ऐ तथा लब्धिके योगसे मेरुपर्वत आदिके शिखरों पर, ष्करादिद्वीपोंमें मनुष्योंका जाना होता है। अढाई- में और दोनों समुद्रोंमें सर्वत्र मनुष्य मिलते हैं। उनके त, जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र आदि सर्वक्षेत्र, द्वीप और समुद्र न्धी संज्ञाभेदसे पृथक् २ विभाग कहलाते हैं।

मनुष्योंके आर्य और म्लेच्छ ऐसे दो भेद हैं। आर्य क्षेत्र, ति, कुल, कर्म, शिल्प और भाषाके भेदसे छः प्रकारके हैं। ार्य पन्द्रह कर्मभूमिमें उत्पन्न होते हैं। जिनमें इस भरतक्षेत्रमें पचीस देशोंमें उत्पन्न हुए मनुष्य आर्य कहलाते हैं। ये देश अपने २ नगरों द्वारा इस प्रकार पहिचाने जाते हैं:—

राजगृही-नगरीसे मगध-देश, चंपानगरीसे अंगदेश, ताम्र- ीसे वंगदेश, वाराणसीसे काशी-देश, कांचनपुरीसे कलिंग- , साकेत (अयोध्या) पुरीसे कोशलदेश, हस्तिनापुरसे कुरु- , शौर्यपुरसे कुशार्त्त-देश, कांपिल्यपुरसे पांचालदेश, अहि- त्रापुरीसे जंगलदेश, मिथिलापुरीसे-विदेहदेश, द्वारावती ारका) पुरीसे सौराष्ट्रदेश, कौशांबीपुरीसे वत्सदेश, भद्दिल- े मलयदेश, नांदिपुरसे सन्दर्भदेश, पुनः अच्छपुरीसे वरुणदेश, टनगरीसे मत्स्यदेश, शुक्तिमतीपुरीसे चेदीदेश, मृत्तिकावती- शार्णदेश, वीतभयपुरसे सिन्धुदेश, मथुरापुरीसे सौवीर- , अपापापुरीसे शूरसेनदेश, भंगीपुरीसे मासपुरीवर्त्तदेश, श्रस्तीपुरीसे कुणालदेश, कोटिवर्षपुरसे लाटदेश और श्वेतंबी-

ीप छप्पन हैं। जिनमेंसे अट्ठावीसद्वीप क्षुद्रहिमवान्-पर्वतके
ो और पश्चिम बाजूके किनारे ईशान्यादि चार दिशाओंमें ल-
णसमुद्रमें निकली हुई दाढों पर स्थित हैं. उनमें ईशान-कोण-
जम्बूद्वीपकी जगतिसे तीनसौ योजन लवण-समुद्रमें जाने पर
ां उतना ही लंबा चौडा प्रथम " एकोरुक " नामक अंतर-
प है। इस द्वीपमें इसीके नामसे सर्वअंग-उपांगमें सुन्दर मनु-
रहते हैं. केवल एकोरुकद्वीप ही में नहीं बल्कि अन्य सर्व
तरद्वीपोंमें उन्हींके नामसे पहिचाने जानेवाले मनुष्य ही
ते हैं। आग्नेय आदि शेप तीन विदिशाओंमें क्रमशः उतनेही
, उतने ही लंबे चौडे आभापिक, लांगुलिक, और वैपाणिक
मके द्वीप हैं। तदनंतर जगतिसे चारसौयोजन लवण-
ुद्रमें जाने पर वहां उतनी ही लंबाई-चौडाईवाले चार अन्तर-
प क्रमशः हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण, और शप्कुलिकर्ण नामसे
थत हैं। इसके बाद जगतिसे पांचसौ योजन दूर उतने ही
स्तारवाले आदर्शमुख, मेपमुख, हयमुख, और गजमुख, नाम-
चार अंतरद्वीप क्रमशः चारों विदिशाओंमें हैं। पश्चात् छःसौ
जन दूर समान विस्तारवाले अश्वमुख, हास्तिमुख, सिंहमुख,
र व्याघ्रमुख नामक अन्तरद्वीप; सातसौ योजन दूर अश्वकर्ण
हकर्ण, हास्तिकर्ण, और कर्णप्रावरणनामक अन्तरद्वीप; आठ-
ौ योजन दूर उल्कामुख, विद्युज्जिव्ह, मेघमुख, और विद्युद्दन्त
मक अन्तरद्वीप और नवसौ योजन दूर गूढदन्त, घनदन्त,

रमें भी आठ योजन हैं। वे वैमानिक, असुरकुमार, नागकु-
, और सुवर्णकुमारके आश्रयरूप हैं। और उन्हींके नामसे वे
गात हैं। उन चारों द्वारोंके मध्यमें सोलह योजन लम्बी व उ-
ही चौडी और आठ योजन ऊंची एक मणिपीठिका है। उस
ठिकाके ऊपर सर्व रत्नमय देवच्छंदक हैं। वे पीठिकासे विस्तार-
ौर ऊंचाईमें अधिक हैं. प्रत्येक देवच्छंदकके ऊपर ऋषभ,
ान, चन्द्रानन और वारिषेण नामक पर्यंकआसनसे बैठी
अपने परिवार सहित, रत्नमय शाश्वत अर्हतकी एकसौ आठ २
ार प्रतिमाएं हैं। प्रत्येक प्रतिमाके साथ परिवारभूत दो २
, यक्ष, भूत और कुम्भधारीदेवताओंकी प्रतिमाएं हैं। दोनों
दो चामरधारप्रतिमाएं हैं, और प्रत्येक प्रतिमाके पृष्ठ भाग
क २ छत्रधारप्रतिमा है, प्रत्येक प्रतिमाके समीप धूपघटी,
ा, घंटा, अष्टमंगलिक, ध्वज, छत्र, तोरण, चंगेरी, पुष्पपात्र,
नि, सोलह पूर्ण-कलश वगैरह अलंकार हैं। वहांकी भूमि-
सतह पर सुवर्णकी सुन्दर रजयुक्त वालुका है। उन देवायत-
सन्मुख उन्हींके अनुसार सुन्दर मुखमंडप, प्रेक्षार्थमंडप,
वाटिका और मणिपीठिका हैं। वहां रमणीक स्तूपप्रतिमा हैं,
ार चैत्यवृक्ष हैं, इन्द्रध्वज हैं और अनुक्रमसे दिव्यवापिकाएं हैं।
क अंजनादिकके चारों ओर लाख २ योजनके प्रमाणवाली
िकाएं हैं, याने कुल सोलह वापिकाएं हैं. उनके नाम
:—नंदिषेणा, अमोघा, गोस्तूपा, सुदर्शना, नन्दोत्तरा, नंदा,

ह शरीर तो उलटा सुख दुःखको देनेवाला है, यदि यह कहा कि सुख दुःखको देनेवाला शरीर सहायकारी है तो वह पूर्व-से साथमें आता नहीं और अगलेभवमें साथ आनेवाला भी इससे संकटमें आई हुई कायाको सहकारी कैसे कहाजाय? ऐसा मानें कि धर्म और अधर्म सहायकारी हैं, तो यह भी नहीं, कारण कि धर्म अधर्मकी सहायता मोक्षमें बिलकुल। अतः इस संसारमें शुभ अशुभ-कर्म करता हुआ प्राणी अ-भटकता है और अपने शुभाशुभकर्मके अनुसार शुभाशुभ भोगता है। इसी प्रकार अनुत्तर-मोक्षलक्ष्मीको भी अकेला प्राप्त करता है; कारण कि वहां पूर्वोक्त सर्व संबंधियोंका विरह से अन्य किसीका साथ रहना संभव नहीं। इसलिये संसार की दुःख और मोक्ष सम्बंधी सुखको प्राणी अकेला ही भोगता इसमें कोई सहायकारी नहीं। जैसे हाथ पैर छूटे रहने मनुष्य ला ही तत्काल समुद्रको पार करजाता है, परन्तु हृदय, हाथ, र बंधा हुआ पुरुष कदापि पार नहीं जा सकता। इसी तरह धन व देह आदि पर आसक्त होता है वह इस भवसागरको नहीं कर सकता। परन्तु जो प्राणी उन पर आसक्ति रहित ला स्वस्थ होवे वह तत्काल ही इस भवसिन्धुको तैर जाता इस लिये सर्व सांसारिक सम्बन्धको छोडकर प्राणीने अकेले श्वत आनन्द सुखवाले मोक्षके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

—=—

ींचते हैं। कितने ही नारकियोंको, धोबी वस्त्र पछाडता है भांति परमाधर्मादिक हाथ पैर आदि पकड कर वज्रकंटकके त संकटकारी शिला पर पछाडते हैं, कहीं उनको काष्ठकी भांति ा करवतसे चीरते हैं और किसी जगह तिलकी भांति विचित्र द्वारा पीलते हैं, और नित्य तृषातुर उन नारकियोंको ले जा तृषा शान्त करनेके लिये कथीर व शीशेके रससे भरी हुई णी नामक नदीमें उतारते हैं। कभी उन प्राणियोंकी छायामें की इच्छा होवे तो उनको असिपत्र वनमें लेजाते हैं, वहां के शस्त्र समान पत्रोंके गिरनेसे उनके तिल समान टुकडे ते हैं। किसी जगह वज्रकंटक समान शाल्मलीके वृक्षके साथ कहीं अत्यन्त तपाई हुई लोहकी पुतलीके साथ आलिंगन त हैं और उस समय उनको परस्त्रीके किये हुए आलिंगनका ण कराते हैं। किसी जगह पूर्व कृत मांस-भक्षणकी लोलुपता-स्मरण कराकर उनको उन्हींके अंगका मांस तोड २ कर खि-ा जाता है और मदिरा-पानका स्मरण करा कर तपा हुआ र पिलाया जाता है। वहां तेलमें तलना, खुजली, महाशूल कुंभीपाक आदिकी वेदनाका निरन्तर अनुभव कराते हैं। मांसकी भांति उनको सेकते हैं। उन प्राणियोंके शरीर छिन्न न होकर पुनः मिल जाया करते हैं। उनके नेत्रादि अंग चील, आदि पक्षियोंसे नुचवाते हैं। इसतरह महादुःखोंसे पीडित लेशमात्र सुखसे भी रहित प्राणी वहां रह कर यावत् तेतीश ागरोपम समान दीर्घकालको निर्गमन करते हैं।

संयतआदि गुणस्थानोंमें जो संवर होता है वह प्रमादसंवर कह-
लाता है।उपशान्तमोह और क्षीणमोह गुणस्थानमें कषायका संवर
होनेसे वहां कषायसंवर कहलाता है। अयोगीकेवलीनामके चउदहवें
गुणस्थानमें योगसंवर सम्पूर्णतः होता है। जैसे नाविटिये छिद्ररहित
नौका द्वारा समुद्रको पार कर जाते हैं, उसी प्रकार सद्बुद्धि पु-
रुष उपरोक्तानुसार संवरयुक्त होकर इस संसारको पार करलेता है।

—※—

श्रीश्रेयांसनाथजीकी देशना.

यह अपार संसार स्वयंभूरमण समुद्रके समान है उसमें
प्राणी कर्मरुपी लहरोंसे आडा अवला व ऊंचा नीचा अर्थात्
उर्ध्व अधः व तिरछेलोकमें भटका करता है। पवनसे जैसे
स्वेदबिन्दु और औषधिसे जैसे रस झर जाता है वैसेही निर्जरासे
अष्टकर्म नष्ट हो जाते हैं। संसारके बीजोंसे भरे हुए कर्मोंकी
निर्जरना करनेसे (बिखरनेसे) उसका नाम निर्जरा कहलाता है,
वह दो प्रकारकी है:- १ सकाम और २ अकाम। जो यमनिय-
मके धारण करनेवाले हैं उनको सकामनिर्जरा होती है। और
अन्यप्राणियोंको अकामनिर्जरा होती है। कर्मोंकी परिपक्वता
फलकी भांति प्रयत्नसे अथवा स्वयमेव ऐसे दो प्रकारसे होती
है। जैसे सुवर्ण दोषयुक्त हो तो भी प्रदीप्त अग्नि द्वारा शुद्ध
होता है, उसी भांति तपरूप अग्निद्वारा सदोष जीव भी शुद्ध हो
जाता है। तप बाह्य और अभ्यंतर ऐसे दो प्रकारका है। अन-

ते हैं और कितने ही कौलाचार्यके शिष्य होते हैं, इन
ा इनके सिवाय दूसरोंको भी जिनके चित्तमें जैनशासन
र्श नहीं हुआ, वैसे पुरुषोंको धर्म क्या वस्तु है ? उसका फ
ा ? व उनके धर्ममें सुकथितता भी क्या ?

श्रीजिनेन्द्र--भाषितधर्मके आराधनसे इसलोकमें औ
लोकमें जो सुखकारी फल होता है वह तो उसका आनुषंगिक
अवान्तर] फल है, परन्तु उसका मुख्य फल तो मोक्ष ही
। जैसे कृषि करनेका मुख्य हेतु धान्य उपार्जन करना है,
न्तु उसमें पराल आदि जो होते हैं वे आनुषंगिक फल हैं,
ही धर्म करनेका मुख्य फल मोक्ष ही है, उसमें जो
सारिक फल होता है वह तो आनुषंगिकफल ही है।

—०—

श्रीविमलनाथजीकी देशना।

अकामनिर्जरारूप पुण्यसे प्राणीको स्थावरपनेसे त्रसपन
तिर्यंचपंचेंद्रियपना कठिनतासे प्राप्त होता है। उसमें भ
कर्मकी लाघवता होती है तदनन्तर मनुष्यजन्म, आर्यदेश
मकुल, सर्वइंद्रियोंका पाटव और दीर्घ आयुष्य क्वचित ही
प्त होता है। उसमें भी विशेष पुण्य हो तो धर्मकथक-गुरुका
ग और शास्त्र-श्रवण तथा उसमें श्रद्धादि प्राप्त होते हैं
तु उसमें तत्त्वनिश्चयरूप बोधिरत्न प्राप्त होना अति दुर्लभ है
न-प्रवचनमें जैसा बोधिरत्न अत्यंत दुर्लभ है वैसा राजापन।

चक्रवर्तीपना वा इन्द्रपना प्राप्त करना दुर्लभ नहीं । सर्वजीवोंने पूर्वमें अनंतवार सर्व भाव प्राप्त किये होंगे परंतु जब तक इस संसारमें उन जीवोंका परिभ्रमण देखनेमें आता है तब तक उन्होंने कभी भी बोधिरत्नकी प्राप्ति करी हुइ नहीं जान पडती। सर्व प्राणियोंको इस संसारमें परिभ्रमण करते अनंतपुद्गलपरावर्तन हो गये हैं परंतु जब अंतिम अर्द्धपुद्गलपरावर्त्तन संसार शेष रहजाता है तब यथाप्रवृत्तिकरण द्वारा सर्व कर्मोंकी स्थिति एक कोटानुकोटी सागरोपमसे कम करके कोई प्राणी ग्रंथिभेद होनेसे उत्तम बोधिको पाता है। कितने ही प्राणी यथाप्रवृत्तिकरण करनेसे उस ग्रंथीकी सीमापर पहुंच गये हों तो भी दुःख पाते हैं और वहांसे पीछे फिरते व पुनः संसारभ्रमण करते हैं। कुशास्त्रका श्रवण, मिथ्यादृष्टिका समागम, बुरी वासना और प्रमाद करनेकी टेव—ये समकित प्राप्तिके साम्हने होनेवाले शत्रु हैं। यद्यपि चारित्रकी प्राप्ति भी दुर्लभ है परंतु जो बोधिकी प्राप्ति होगई हो तो वह सफल है, अन्यथा निष्फल है। अभव्यप्राणी भी चारित्र ग्रहण करके नवमें ग्रैवेयक तक उत्पन्न होते हैं, परंतु बोधिके विना वे मोक्ष पदको नहीं पा सकते। चक्रवर्ती भी बोधिरत्नके विना रंक समान है, और बोधिरत्नकी प्राप्ति करनेवाला रंक हो तो भी उससे बढकर है। जिनको बोधिरत्नकी प्राप्ति होजाती है वे कभी भी इस संसारमें राग नहीं रखते, बल्कि ममतारहित होकर मुक्तपनसे मुक्तिमार्ग ही को भजते हैं।

र दुष्पक्व वस्तुका आहार-ये पांच अतिचार भोगोपभोग
माण नामक सातवें व्रतके हैं। ये अतिचार भोजन आश्रयसे
ग करनेके हैं और दूसरे पन्द्रह कर्मसे त्यागनेके हैं, उसमें
कर्मका भी त्याग करना चाहिये। ये पन्द्रह प्रकारके कर्मादान
तरह से हैं, यथाः—अंगारजीविका, वनजीविका, शकट-
विका, भाटकजीविका, स्फोटजीविका, दन्तवाणिज्य, लाख-
णिज्य, रसवाणिज्य, केशवाणिज्य, विषवाणिज्य, यंत्रपीडा,
र्लाछन, असतीपोषण, दवदान और सरःशोष-ये पन्द्रह कर्मा-
न हैं। अग्निकी भट्टी करना, कुंभार, लोहार, तथा सुवर्ण-
रपना करना और चूना व ईंटें पकाना इत्यादि कामोंसे जो
जीविका की जाती है उसे अंगारजीविका कहते हैं। तोडे हुए
विना तोडे हुए वनके पत्र, पुष्प, फल आदि लाकर वेचना
र अनाज दलना, खांडना आदिके द्वारा जो आजीविका की
ती है उसे वनजीविका कहते हैं। शकट (गाडी) व उनके
हिये, धुरे आदि बनाना, चलाना व वेचना आदिसे जो आजी-
का की जाती है उसे शकटजीविका कहते हैं। गाडी, बैल,
:, पाडे, खच्चर, खर, और घोडे आदिको भाडे देकर, बोझा
वा कर उसके द्वारा जो आजीविका की जाती है उसे भाटक-
विका कहते हैं। सरोवर तथा कुए आदि खोदना, शिला
पाण कडना आदि पृथ्वी सम्बन्धी जो कुछ भी आरम्भ
ना व उसके द्वारा आजीविका करना उसे स्फोटजीविका

होते हैं। पशुओंके दांत, केश, नख, अस्थि, चमड़ा और रोम आदि उनके उत्पत्तिस्थानसे ग्रहण करके अन्यत्र उन अंगोंका जो व्यापार करना उसे दंतवाणिज्य कहते हैं। लाख, मनःशिला, नीली, धावडी और टंकणक्षार आदि वस्तुओंका जो व्यापार करना उसे पापगृहरूप लाक्षवाणिज्य कहते हैं। मक्खन, चर्बी, मधु और मदिराका व्यापार रसवाणिज्य कहलाता है। और द्विपद मनुष्यादि और चतुष्पद पशु आदिका जो वाणिज्य वो केशवाणिज्य कहलाता है। किसी भी भांतिका विष, किसी भी भांतिका शस्त्र, हल, यंत्र, लोह और हरताल आदि प्राणघातक वस्तुओंका जो व्यापार उसे विषवाणिज्य कहते हैं। तिल, ईख, सरसव और एरंड आदि जलयंत्रादिक यंत्रोंसे पीलना तथा पत्तोंमेंसे तेल, रस निकाल कर उसका जो व्यापार करना उसे यंत्रपीडा कहते हैं। पशुओंके नाक बींधना, डाम देना (जला कर चिन्ह करना), मुष्कच्छेद (खसी करना), पृष्टभाग और कान आदि अंग बींधना--यह निर्लांछनकर्म कहलाता है। द्रव्यके लिये तोते, मैना, बिल्ली, मुर्गे और मोर आदि पक्षियोंको पालना व दासियां रखना--यह असतीपोषण कहलाता है। व्यसनसे अथवा पुण्यबुद्धिसे दावानलका देना दवदान कहलाता है और सरोवर, नदी, तालाब आदिके जलको सुखानेका उपाय करना वह सरःशोष कहलाता है। इस प्रकारके पंद्रह कर्मादानोंको ध्यानमें लेकर उनका त्याग करना चाहिये।

मुनिने हिंसासे दूर रहकर शोक संताप नहीं करना चाहिये। परिग्रहको अहितकारी समझ कर आज ही उसका त्याग कर देना चाहिये। तथा विषयवांछारूप प्रवाहको भी अहितकारी जानकर इन्द्रियोंको वशमें करना चाहिये। इस मनुष्य भवमें श्रेष्ठ होकर कदापि जीवहिंसा न करना चाहिये।

॥ ॐ नमः सिद्धं ॥
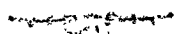
कविवरश्रीधनपालपंडितविरचित

श्रीऋषभपंचाशिका

(सार्थ)

जय जंतुकप्पपायव ! चंदायव रागपंकयवणस्स ।
सयलमुणिगामगामणि ! तिलोअचूडामणि नमो ते ॥ १ ॥
[जय जन्तुकल्पपादप ! चन्द्रातप रागपंकजवनस्य ।
सकलमुनिग्रामग्रामणीः त्रिलोकचूडामणे नमस्ते] १

भावार्थः—जगतके जीवोंको इच्छित देनेके लिये कल्पवृक्षके समान, रागरूप कमलवनको संकुचित करनेके लिए चंद्रकी कांतिके समान, समस्त मुनिगणके अग्रसर, तीन लोकके मुकुटके समान, ऐसे हे ऋषभदेव भगवन ! तुमको नमस्कार हो. ॥ १ ॥

जय रोसजलणजलहर ! कुलहर वरनाणदंसणसिरीणं ।
मोहतिमिरोहदिणयर ! नयर गुणगणाण पउराणं ॥ २ ॥
[जय रोषज्वलनजलधर ! कुलगृह वरज्ञानदर्शनश्रियोः ।
...नां पौराणाम्] २

मुनिने हिंसासे दूर रहकर शोक सं
परिग्रहको अहितकारी समझ कर ३
देना चाहिये। तथा विषयवांछारूप
जानकर इन्द्रियोंको वशमें करना च
श्रेष्ठ होकर कदापि जीवहिंसा न कर

भावार्थः—हे जगद्गुरु! अचिंत्य और दुर्लभ ऐसे मोक्षसुख-
रूप फलको देनेवाले ऐसे अपूर्वकल्पवृक्षके समान तुम्हारे अवतार
से कल्पवृक्ष अदृश्य हो गये, मानो कि उनको लज्जा न आइ हों ॥६॥

अरएणं तइएणं इमाइ ओसप्पिणीइ तुह जम्मे ।
फुरिअं कणगमएणं व कालचक्किक्कपासंमि ॥ ७ ॥
(अरकेण तृतीयेनास्यामवसर्पिण्यां तव जन्मनि ।
स्फुरितं कनकमयेनेव कालचक्रैकपार्श्वे.) ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे जगत्पूज्य ! कालचक्रके एक हिस्सा स्वरूप
इस अवसर्पिणीकालमें तुम्हारे सुजन्मसे तीसरा आरा मानो
सुवर्णमय न बनगया हो ऐसा देदीप्यमान हो रहा है ॥ ७ ॥

जंमि तुमं अहिसित्तो जत्थ य सिवसुक्खसंपयं पत्तो ।
ते अट्ठावयसेला सीसामेला गिरिकुलस्स ॥ ८ ॥
(यत्र त्वमभिषिक्तो यत्र च शिवसुखसंपदं प्राप्तः ।
ताविष्टापदशैलौ शीर्षापीडौ गिरिकुलस्य.) । ८ ।

भावार्थः—हे प्रभु ! जहां इन्द्रोंने तुम्हारा जन्माभिषेक
किया और जहां तुम मुक्तिसुखरूप संपत्तिको पाये वे दोनों
अष्टापदशैल याने मेरुपर्वत और अष्टापद नामक पर्वत गिरिगण
के शिरोमुकुट हुए. ॥ ८ ॥

१ अष्टापद याने सुवर्ण तन्मय जो शैल अर्थात् मेरुपर्वत वहां
जन्माभिषेक हुआ. और अष्ट सोपान वाला जो अष्टापद वहां भग-
वान निर्वाण पाए.

धन्ना सविम्हयं जेहिं झत्ति कयरज्जमज्जणो हरिणा ।
चिरधरिअनलिणपत्ताभिसेअसलिलेहिं दिट्ठो सि ॥ ९ ॥
(धन्याः सविस्मयं यैर्झगिति कृतराज्यमज्जनो हरिणा ।
चिरधृतनलिनीपत्राभिषेकसलिलैर्दृष्टोऽसि.) ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे भगवन् ! कमलपत्र में स्थापित अभिषेक का जल चिरकाल तक धारण किया है जिन्होंने ऐसे जो युगलिक नर इंद्रसे जल्दी राज्याभिषेक कराये हुए तुमको सहर्ष देखते ही रहे वे युगलिक मनुष्य धन्य हैं. ॥ ९ ॥

दाविअविज्जासिप्पो वज्जरिआसेसलोअववहारो ॥
जाओसि जाण सामिअ पयाओ ताओ कयत्थाओ ॥१०॥
(दर्शितविद्याशिल्पो व्याकृताशेषलोकव्यवहारः ॥
जातोऽसि यासां स्वामी प्रजास्ताः कृतार्थाः) ॥ १० ॥

भावार्थः—हे परमोपकारिन् ! वे प्रजा कृतार्थ हुई कि जिनको तुमने शिल्पकला दिखाई, समस्त लोकव्यवहार बताया और जिनके तुम मालिक हुए. ॥ १० ॥

बंधुविहत्तवसुमई वच्छरमच्छिन्नदिन्नधणनिवहो ॥
जह तं तह को अन्नो निअमधुरं धीर! पडिवन्नो? ॥११॥
(बंधुपुत्रविभक्तवसुमतीको वत्सरमच्छिन्नदत्तधननिवहः॥
यथा त्वं तथा कोऽन्यो नियमधुरं धीर ! प्रतिपन्नः?) ११

भावार्थः--सो पुत्रोंको पृथिवीका विभाग देके पीछे वर्ष तक निरंतर खूब द्रव्यका दान देनेवाले ऐसे हे धीर ! याने दीक्षाग्रहण किये बाद एक साल तक क्षुधापरिषहको सहन करनेवाले ! तुमने जिस प्रकार नियमधुरा याने संयमरूप धुरको अंगीकार किया वैसा दूसरा कौन है ? ॥ ११ ॥

सोहसि पसाहिअंसो कज्जलकसिणाहिं जयगुरु ! जडाहिं ।
उवगूढविसज्जिअरायलच्छिबाहच्छडाहिं व ॥ १२ ॥
[शोभसे प्रसाधितांसः कज्जलकृष्णाभिर्जगद्गुरो !जटाभिः
उपगूढविसर्जितराजलक्ष्मीबाष्पच्छटाभिरिव] ॥ १२ ॥

राज्यके समय आलिंगन की हुइ और पीछे दीक्षाके समय याग की हुइ ऐसी राज्यलक्ष्मीकी मानो काजल मिश्रित आंसु- ी धारा न हों ऐसी कृष्णजटासे जिसका स्कंध विभूषित है ऐसे जगद्गुरु ! आप शोभायमान हो रहे हैं ॥ १२ ॥

वसामिआ अणज्जा देसेसु तए पवन्नमोणेणं ।
भणंत च्चिअ कज्जं परस्स साहंति सप्पुरिसा ॥ १३ ॥
उपशमिता अनार्या देशेषु त्वया प्रपन्नमौनेन ।
भणंत एव कार्यं परस्य साधयन्ति सत्पुरुषाः] ॥१३॥

हे कृपानाथ ! तुमने अंगीकार किये हुए मौनव्रतसे अनार्य ोगोंको प्रशांत किया, अर्थात् सिर्फ आपकी सुंदर आकृतिके

उप्पन्नविमलनाणे तुमंमि भुवणस्स विअलिओ मोहो ॥
सयलुग्गयसूरे वासरंमि गयणस्स व तमोहो ॥ १६ ॥
[उत्पन्नविमलज्ञाने त्वयि भुवनस्य विगलितो मोहः ॥
सकलोद्गतसूर्ये वासरे गगनस्येव तमओघः] ॥ १६ ॥

हे वीतराग! जैसे संपूर्ण सूर्योदयवाले दिवस होते हुए अंधकारका समूह आकाशसे पलायन कर जाता है, वैसे उत्पन्न हुए निर्मल ज्ञानवाले आपके होनेसे मोह भी जगतमेंसे नष्ट होगया ॥ १६ ॥

[...]आवसरे सारिसो दिट्ठो चक्कस्स तंपि भरहेण ॥
[...]विसमा हु विसयतिण्हा गरुआणवि कुणइ मइमोहं ॥१७ ॥
[...]जावसरे सदृशो दृष्टश्चक्रस्य त्वमपि भरतेन ॥
[...]विषमा खलु विषयतृष्णा गुरूणामपि करोति मतिमोहं १७

हे विभो ! केवलज्ञानके महोत्सवके अवसर पर भरत [...]क्रवर्तिने तुमको भी चक्ररत्नके समान देखा याने प्रथम चक्र[...] पूजा करुं या भगवानकीकरुं? ऐसा विचारा, इसका कारण यह [...] कि विषय-तृष्णा विषम है, जोके महान् पुरुषोंकी भी मतिको [...]मित करती है ॥ १७ ॥

[...]इमसमोसरणमुहे तुह केवलसुरवहकओज्जोआ ॥
[...]या अग्गेइ दिसा सेवा[...] ॥१८ ॥

[प्रथमसमवसरणमुखे तव केवलसुरवधूकृतोद्योता ॥
जाता आग्नेयी दिशा सेवास्वयमागतशिखीव] ॥१८ ॥

हे भगवन् ! तुम्हारे प्रथमसमवसरणके प्रारंभमें सिर्फ देवांगनाओंने किये हुए उद्योतवाली आग्नेयी दिशा मानो खुद सेवाके लिये आइ हुइ अग्नि देवता हो, ऐसी शोभायमान हुइ॥१८॥

गहिअवयभंगमलिणो नूणं दूरोणएहिं मुहराओ ॥
ठइओ पढमिल्लुअतावसेहिं तुह दंसणे पढमे ॥ १९ ॥
[गृहीतव्रतभंगमलिनो नूनं दूरावनतैर्मुखरागः ॥
स्थगितः प्रथमोत्पन्नतापसैस्तव दर्शने प्रथमे] ॥ १९ ॥

(हे भगवन्) पहिले पहिल उत्पन्न हुए और अत्यंत नम्र हुए ऐसे तापसोंने आपके प्रथम दर्शनके वक्त नमस्कारके बहाने ग्रहण किये हुए व्रतके भंगसे मलिन ऐसा मुखराग जरूर ढांक दिया ॥ १९ ॥

तेहिं परिवेढिएण य वूढा तुमए खणं कुलवइस्स ॥
सोहा विअडंसत्थलघोलंतजडाकलावेण. ॥ २० ॥
[तैः परिवेष्टितेन च व्यूढा त्वया क्षणं कुलपतेः ।
शोभा विकटांसस्थलप्रेंखज्जटाकलापेन.] ॥ २० ॥

उन (तापसों) से परिवृत और जिसके विशाल स्कंधपर जटा समूह हिल रहा है ऐसे (हे भगवन्) तुमने क्षणवार कुल-पतिकी शोभा वही ॥ २० ॥

तुह रूवं पिच्छंता न हुंति जे नाह हरिसपडिहत्था ॥
समणावि गयमणच्चिय ते केवलिणो जइ न हुंति । २१ ।
[तव रूप पश्यंतो न भवंति ये नाथ ! हर्षपरिपूर्णाः ॥
समनस्का अपि गतमनस्का एव ते केवलिनो यदि न
भवंति ॥ २१ ॥

हे नाथ ! तेरे रूपको देखनेवाले जो हर्षसे पूर्ण नहीं होते, वे मनवाले होते भी मन विनाके ही हैं, यदि वे केवलज्ञानी न हों ॥ २१ ॥

पत्ताणि असामन्नं समुन्नइं जेहिं देवया अन्ने ॥
ते दिंति तुम्ह गुणसंकहासु हासं गुणा मज्झ ॥ २२ ॥
[प्राप्तान्यसामान्यां समुन्नतिं यैर्दैवतान्यन्यानि ॥
ते ददते तव गुणसंकथासु हासं गुणा मह्यम्] ॥ २२ ॥

जो (जगत्कर्तृत्वादि) कल्पित गुणों से अन्य देवोंने असाधारण उच्चपदवी पाई, वे (कल्पितगुण) तेरे (सद्भूत) गुणोंके कीर्तनके समय मुझे हंसी देते हैं ॥ २२ ॥

दोसरहिअस्स तुह जिण! निंदावसरंमि भग्गपसराए ॥
वायाइ वयणकुसलावि बालिसायंति मच्छरिणो । २३ ।
[दोषरहितस्य तव जिन! निन्दावसरे भग्नप्रसरया ।
वाचा वचनकुशला अपि बालिशायंते मत्सरिणः] । २३ ।

हे जिन! छिद्रगवेषी लोग बोलनेमें चालाक होते भी दोष से रहित ऐसे तुम्हारी निंदाके अवसर तुटी फुटी वाणीसे मूर्खजैसी चेष्टा करते हैं ॥ २३ ॥

अणुरायपल्लविल्ले रइवल्लिफुरंतहासकुसुमंमि ।
नववनाविओवि न मणो सिंगारवणे तुहल्लीणो ॥ २४ ॥
[अनुरागपल्लववनि रतिवल्लिस्फुरद्धासकुसुमे ॥
तपस्तापितमपि न मनः शृंगारवने तवालीनम्] ॥ २४ ॥

अनुरागही जिसमें पल्लव है, रतिरूप वेलपर स्फुरायमान हास्य ही जिसमें फूल है- ऐसे शृंगाररूप वर्गीचेमें (हे भगवन्) तेरा मन तपसे तपा हुआ भी आसक्त नहीं हुआ ॥ २४ ॥

आणा जस्स विलइआ सीसे सेसव्व हरिहरेहिंपि ॥
सोऽवि तुह झाणजलणे मयणो मयणं विअ विलीणो ॥ २५ ॥
[आज्ञा यस्य विलगिता शीर्षे शेषेव हरिहराभ्यामपि ॥
सोऽपि तव ध्यानज्वलने मदनो मदन इव विलीनः]।२५।

(हे भगवन्) हरिहर आदि देवोंने भी जिसकी आज्ञा देवनिर्माल्यकी तरह मस्तकपर धारण की, वह कामदेव भी तेरे — ध्यानमें मोमकी तरह विलीन होगया ॥ २५ ॥

पइं नवरि निरभिमाणा जाया जयदप्पभञ्जणुत्ताणा ।
वम्महनरिंदजोहा दिट्ठिच्छोहा मयच्छीणम् ॥ २६ ॥
[त्वयि केवलं निरभिमाना जाता जगदर्पभंजनोत्तानाः।
मन्मथनरेंद्रयोधा दृष्टिक्षोभा मृगाक्षीणाम्.] ॥ २६ ॥

(हे भगवन्) जगत (जनों) का गर्व नाश करनेसे मस्त बने हुए स्त्रियोंके नेत्रके कटाक्षरूप कामनरेशके सैनिक फक्त तुम्हारे पर अहंकार रहित हुए, याने फलीभूत नहीं हुए ॥२६॥

विसमा रागद्दोसा निंता तुरयव्व उप्पहेण मणम् ।
ठायंति धम्मसारहि! दिट्ठे तुह पवयणे नवरं ॥ २७ ॥
[विषमौ रागद्वेषौ नयंतौ तुरगाविवोत्पथेन मनः ।
तिष्ठतो धर्मसारथे! दृष्टे तव प्रवचने निश्चितम्] ॥ २७ ॥

हे धर्मसारथि! (उन्मत्त) घोडेकी तरह मनको उन्मार्ग ले जाते हुए विषम राग और द्वेष तुम्हारे आगम दृष्ट होनेपर जरुर अटक जाते हैं ॥ २७ ॥

पच्चलकसायचोरे सइसंनिहिआसिचक्कधणुरेहा ।
हुंति तुह च्चिअ चलणा सरणं भीआण भवरन्ने ॥२८॥
(प्रत्यलकषायचौरे सदा संनिहितासिचक्रधनुरेखौ ।
भवतस्तवैव चरणौ शरणं भीतानां भवारण्ये) ॥२८॥

लीलाइ निंति मुक्खं अन्ने जह तित्थिआ तहा न तुमं ।
तहवि तुह मग्गलग्गा मग्गंति बुहा सिवसुहाइं ॥३१
[लीलया नयंति मोक्षमन्ये यथा तीर्थिका तथा न त्वम्
तथापि तव मार्गलग्ना मृगयंते बुधाः शिवसुखानि ॥३

(हे नाथ!) जैसे अन्य मजहबवाले लीलासे मोक्षको पमाते हैं, वैसे तुम नहीं पमाते हो तथापि तेरे शासनमें आशक्त हुए सत्पुरुष मुक्तिके सुखोंको मांग रहे हैं ॥ ३१ ॥

सारिव्व बंधवहमरणभाइणो जिण ! न हुंति पइं दिट्ठे ।
अक्खेहिंवि हीरंता जीवा संसारफलयंमि !! ३२ ॥
[शारय इव बंधवधमरणभागिनो जिन!न भवंति त्वयि दृष्टे
अक्षैरपि ह्रियमाणा जीवाः संसारफलके ॥ ३२ ॥

हे जिन! संसाररूप चोपाटमें (पदकी तरह) तुम्हारे दर्शन होने से इन्द्रियपासा करके घुमाये जाते हुए जीव सारी-गोटीकी तरह बंध-वध-मरणके भाजन नहीं होते हैं ॥ ३२ ॥

अवहीरिआ तए पहु ! निंति निओगिक्कसंखलाबद्धा ।
कालमणंतं सत्ता समं कयाहारनीहारा ॥ ३३ ॥
[अवधीरितास्त्वया प्रभो! नयंति निगोदैकशृंखला ।
बद्धाः कालमनंतं सत्त्वाः समं कृताहारनीहाराः] ॥३३॥

हे प्रभु ! तुम्हारे से उपेक्षित हुए जीव निगोद रूप एक शृंखलामें बंधे हुए (और) एक साथ आहार निहारको करते हुए अनंत काल (निगोदमें) व्यतीत कर रहे हैं ॥ ३३ ॥

जेहिं तविआणं तवनिहि! जायइ परमा तुमम्मि पडिवत्ती
दुक्खाइं ताइं मन्ने न हुंति कम्मं (मूलं) अहम्मस्स ॥३४॥
[यैस्तापितानां तपोनिधे! जायते परमा त्वयि प्रतिपत्तिः ।
दुःखानि तानि मन्ये न भवंति कर्माधर्मस्य] ॥ ३४ ॥

हे तपोनिधि! जिन (दुःखों) से पीडित हुए (जीवों) को तुम्हारे पर उत्कृष्ट भक्ति पैदा होती है वे दुःख पापजनक (पापानुबंधी) नहीं हैं ॥३४॥

होही मोहुच्छेओ तुह सेवाए धुवत्ति नंदामी ॥
जं पुण न वंदिअव्वो तत्थ तुमं तेण झिज्जामि ॥३५॥
(भविष्यति मोहोच्छेदस्तव सेवया ध्रुवं इति नन्दामि ॥
यत् पुनर्न वंदितव्यस्तत्र त्वं तेन क्षीये) ॥ ३५ ॥

(हे प्रभु!) तुम्हारी सेवासे (अवश्य) मोहका-अज्ञानका नाश होगा. इस हेतु से मैं हर्ष करता हूं, पर जो उस समय तुम नमस्कारके विषय नहीं होंगे उससे मैं खिन्न होता हूं ॥ ३५ ॥

जा तुह सेवाविमुहस्स हुंतु मा ताउ मह समिद्धीओ ॥
अहिगारसंपया इव पेरंतविडंबगफलाओ ॥ ३६ ॥

(यास्तव सेवाविमुखस्य भवंतु मा ता मम समृद्धयः।
अधिकारसंपद इव पर्यंतनिडंबनफलाः) ॥ ३६ ॥

(हे विभु) तुम्हारी सेवासे विमुखकी जो संपत्तियां हैं वे अधिकार प्राप्त लक्ष्मी की तरह आखीर में दुःख दायक होने से मुझे मत हो ॥ ३६ ॥

भित्तूण तमं दीवो देव! पयत्थे जणस्स पयडेइ ॥
तुह पुण विवरीयमिणं जइक्कदीवस्स निव्वाडिअम् ॥३७॥
[भित्त्वा तमो दीपो देव! पदार्थाञ्जनस्य प्रकटयति ॥
तव पुनर्विपरीतमिदं जगदेकदीपस्य निर्वृत्तम्] ॥ ३७ ।

हे देव! दीपक अंधकारको नाश कर मनुष्यके पदार्थके प्रकाशित करता है, पर जगतमें अद्वितीय दीपक समान तुम्हार यह (प्रकाश करनेका) कार्य (उससे) विपरीत हुआ है॥३७।

मिच्छत्तविसपसुत्ता सच्चेयणा जिण! न हुंति किं जीवा!
कण्णम्मि कमइ जइ कित्तिअंपि तुह वयणमन्तस्स ॥३८
[मिथ्यात्वविषप्रसुप्ताः सचेतना जिन!न भवंति किं जीवाः!
कर्णयोः क्रामति यदि कियदपि त्वद्वचनमंत्रस्य] ॥३८॥

हे जिन! यदि (उनके) कानमें तेरे आगम रूप मंत्रक थोडाभी (अंश) पड जाय (तो) मिथ्यात्व रूप जहरसे मूर्छि बने हुए जीव क्या सचेतन-सजीवन नहीं होते ? ॥ ३८ ॥

आयन्निआ खणद्धंपि पइं थिरं ते करिंति अणुरायं ।
परसमया तहवि मणं तुह समयन्नूण न हरंति ॥३९॥
[आकर्णिगताः क्षणार्द्धं त्वयि स्थिरं ते कुर्वन्त्यनुरागं ।
परसमयास्तथापि मनस्तव समयज्ञानां न हरंति] ॥३९।

हे प्रभु! जो पर मजहब के शास्त्र आधा क्षणभी सुने हुए तुम्हारे पर स्थिर प्रेमको कराते हैं तथापि तेरे सिद्धान्तको जाननेवाले के मनको ये हरण नहीं करते हैं ॥ ३९ ॥

वाईहिं परिग्गहिआ करंति विमुहं खणेण पडिवक्खम् ।
तुज्झ नया नाह ! महागयव्व अन्नुन्नसंलग्गा ॥ ४० ॥
[वादि (जि) भिः परिगृहीताः कुर्वंति विमुखं क्षणेन प्रतिपक्षं ।
तव नया नाथ! महागजा इवान्योन्यसंलग्नाः] ॥ ४० ॥

हे नाथ! तेरे परस्पर संबंधवालेके नय वादियोंने (स्वपक्ष-मंडन व परपक्षखंडनके लिये) प्रयोग किये हुए वाक्य घोडोंसे परिवृत हाथियोंकी तरह प्रतिपक्ष--शत्रुको क्षण वारमें परास्त करते हैं ॥ ४० ॥

पावंति जसं असमंजसावि वयणेहिं जेहिं परसमया।
तुह समयमहोअहिणो ते मंदा बिंदुनिस्संदा ॥ ४१ ॥
[प्राप्नुवंति यशोऽसमंजसा अपि वचनैर्यैः परसमयाः ।
तव समयमहोदधेस्तानि मन्दा बिन्दुनिस्यंद्राः] ॥ ४१ ॥

(यास्तव सेवाविमुखस्य भवंतु मा ता मम सम्रद्धयः।
अधिकारसंपद इव पर्यंतविडंबनफलाः) ॥ ३६ ॥

(हे विभु) तुम्हारी सेवासे विमुखकी जो संपत्तियां हैं वे अधिकार प्राप्त लक्ष्मी की तरह आखीर में दुःख दायक होने से मुझे मत हो ॥ ३६ ॥

भित्तूण तमं दीवो देव! पयत्थे जणस्स पयडेइ ॥
तुह पुण विवरीयमिणं जइक्कदीवस्स निव्वाडिअम् ॥३७॥
[भित्त्वा तमो दीपो देव! पदार्थाञ्जनस्य प्रकटयति ॥
तव पुनर्विपरीतमिदं जगदेकदीपस्य निर्वृत्तम] ॥ ३७ ॥

हे देव! दीपक अंधकारको नाश कर मनुष्यके पदार्थको प्रकाशित करता है, पर जगतमें अद्वितीय दीपक समान तुम्हारा यह (प्रकाश करनेका) कार्य (उससे) विपरीत हुआ है॥३७॥

मिच्छत्तविसपसुत्ता सचेयणा जिण! न हुंति किं जीवा।
कण्णंमि कमइ जइ कित्तिअंपि तुह वयणमन्तम्॥३८॥
[मिथ्यात्वविषप्रसुप्ताः सचेतना जिन!न भवंति किं जीवाः।
कर्णयोः क्रामति यदि किमदपि त्वद्वचनमंत्रम्]॥३८॥

हे जिन! यदि (उनके) कानमें तो आपके वचन मंत्रकी थोड़ीसी (अंश) पड़ जाय (तो) मिथ्यात्व रूप जहरसे मूर्छित बने हुए जीव क्या सचेतन-सजीवन नहीं होते? ॥ ३८ ॥

आयन्निआ खणद्धंपि पइं थिरं ते करिंति अणुरायं।
परसमया तहवि मणं तुह समयन्नूण न हरंति ॥३९॥
[आकर्णिताः क्षणार्द्धं त्वयि स्थिरं ते कुर्वन्त्यनुरागं।
परसमयास्तथापि मनस्तव समयज्ञानां न हरंति]॥३९॥

हे प्रभु! जो पर मजहब के शास्त्र आधा क्षणभी सुने हुए तुम्हारे पर स्थिर प्रेमको कराते हैं तथापि तेरे सिद्धान्तको जाननेवाले के मनको वे हरण नहीं करते हैं ॥ ३९ ॥

ाईहिं परिग्गहिआ करंति विमुहं खणेण पडिवक्खम्।
ह नया नाह! महागयव्व अन्नुन्नसंलग्गा ॥ ४० ॥
ादि (जि) भिः परिगृहीनाः कुर्वंति विमुखं क्षणेन प्रतिपक्षं।
तव नया नाथ! महागजा इवान्योन्यसंलग्नाः]॥ ४० ॥

हे नाथ! तेरे परस्पर संबंधवालेके नय वादियोंने (स्वपक्ष-मंडन व परपक्षखंडनके लिये) प्रयोग किये हुए वाक्य योडोओंसे परिवृत हाथियोंकी तरह प्रतिपक्ष--शत्रुको क्षण वारमें परास्त करते हैं ॥ ४० ॥

पावंति जसं असमंजसावि वयणेहिं जेहिं परसमया।
तुह समयमहोअहिणो ते मंदा बिंदुनिस्संदा ॥ ४१ ॥
[प्राप्नुवंति यशोऽसमंजसा अपि वचनैर्यैः परसमयाः।
तव समयमहोदधेस्तानि मन्दा बिन्दुनिस्यंदाः] ॥ ४१ ॥

(हे प्रभु) असार भी अन्य मतके शास्त्र जिन वचनोंसे (दुनियामें) ख्यातिको पाते हैं, वे तेरे सिद्धांतरूप महासमूह के आगे अल्प बुंद कणके बराबर है. ॥ ४१ ॥

पइं मुक्के पोअम्मि व जीवेहिं भवन्नवम्मि पत्ताओ।
अणुवेलमावयामुहपडिएहिं विडंबणा विविहा ॥ ४२ ॥
[त्वयि मुक्ते पोत इव जीवैर्भवार्णवे प्राप्ताः।
अनुवेलमापदा(गा)मुखपतितैर्विडंबना विविधाः]॥४२॥

(हे प्रभु!) संसाररूप समुद्रमें जहाजके समान तुमको छोड देनेपर आपत्तिके मुखमें पडे हुए जीवोंने वारवार अनेक प्रकार की विडंबनायें प्राप्त की है ॥ ४२ ॥

वुच्छं अपत्थिआगयमच्छभवंतोमुहुत्त वसिएण।
छावट्ठी अयराइं निरंतरं अप्पइट्ठाणे ॥ ४३ ॥
[उषितमप्रार्थितागतमत्स्यभवान्तर्मुहूर्त्तमुषितेन।
षट्षष्टिसागरोपमाणि निरंतरमप्रतिष्ठाने] ॥ ४३ ॥

(हे प्रभु!) अणधारे पाये हुए (तंदुल) मच्छके भवमें अंतर्मुहूर्त कालतक रहे हुए मैंने (सातवीं नरकके) अप्रतिष्ठान नामक नरकावासमें ६६ सागरोपम कालतक निरंतर वास किया ॥ ४३ ॥

सीउण्हवासधारानिवायदुक्खं सुनिक्खमणुभूअं ।
तिरिअत्तणंमि नाणावरणसमच्छाइएणावि ॥ ४४ ॥
[शीतोष्णवर्षधारानिपातदुःखं सुतीक्ष्णमनुभूतम् ।
तिर्यक्त्वेऽपि ज्ञानावरणसमवच्छादितेनापि] ॥ ४४ ॥

(हे प्रभु !) ज्ञानावरणीय कर्मसे अत्यंत आच्छादित हुए भी मैंने तिर्यंचपनेमें दुःसह ठंड गरम और वारीशकी धाराके पडनेसे उत्पन्न हुआ दुःख का अनुभव किया ॥ ४४ ॥

अंतोनिक्खंतेहिं पत्तेहिं पिअकलत्तपुत्तेहिं ।
सुन्ना मणुस्सभवणाडएसु निज्झाइआ अंका ॥ ४५ ॥
[अंतर्निष्क्रान्तैः प्राप्तैः (पात्रैः) प्रियकलत्रपुत्रैः ॥
शून्या मनुष्यभवनाटकेषु निभालिता अंकाः] ॥ ४५ ॥

(हे देव !) मनुष्यभव रूप नाटकके अंदर उत्पन्न हुए मैंने गोदमें से चले गये हुए ऐसे प्रिय स्त्री पुत्रों करके अंक शून्य देखे ॥ ४५ ॥

दिट्ठा रिउरिद्धीओ आणाउ कया महिड्ढिअसुराणं ।
सहिआ य हीणदेवत्तणेसु दोगच्चसंतावा ॥ ४६ ॥
[दृष्टा रिपुऋद्धय आज्ञाः कृता महर्द्धिकसुराणाम् ॥
सोढौ च हीनदेवत्वेषु दौर्गत्यसंतापौ] ॥ ४६ ॥

(हे प्रभु) असार भी अन्य मतके शास्त्र जिन वचनोंसे (दुनियामें) ख्यातिको पाते हैं, वे तेरे सिद्धांतरूप महासमूह के आगे अल्प बुंद कणके बराबर हैं. ॥ ४१ ॥

पइं मुक्के पोअम्मि व जीवेहिं भवन्नवम्मि पत्ताओ ।
अणुवेलमावयामुहपडिएहिं विडंबणा विविहा ॥ ४२ ॥
[त्वयि मुक्ते पोत इव जीवैर्भवार्णवे प्राप्ताः ।
अनुवेलमापदा(गा)मुखपतितैर्विडंबना विविधाः]॥४२॥

(हे प्रभु!) संसाररूप समुद्रमें जहाजके समान तुमको छोड देनेपर आपत्तिके मुखमें पडे हुए जीवोंने बारबार अनेक प्रकार की विडंबनायें प्राप्त की है ॥ ४२ ॥

वुच्छं अपत्थिआगयमच्छभवंतोमुहुत्त वसिएण ।
छावट्ठी अयराइं निरंतरं अप्पइट्ठाणे ॥ ४३ ॥
[उषितमप्रार्थितागतमत्स्यभवान्तर्मुहूर्त्तमुषितेन ।
षट्षष्टिसागरोपमाणि निरंतरमप्रतिष्ठाने] ॥ ४३ ॥

(हे प्रभु!) अणधारे पाये हुए (तंदुल) मच्छके भवमें अंतर्मुहूर्त कालतक रहे हुए मैंने (सातवां नरकके) अप्रतिष्ठान नामक नरकावासमें ६६ सागरोपम कालतक निरंतर वास किया ॥ ४३ ॥

सीउण्हवासधारानिवायदुक्खं सुतिक्खमणुभूअं ।
तिरिअत्तणंमि नाणावरणसमच्छाइएणावि ॥ ४४ ॥
[शीतोष्णवर्षधारानिपातदुःखं सुतीक्ष्णमनुभूतम् ।
तिर्यक्त्वेऽपि ज्ञानावरणसमवच्छादितेनापि] ॥ ४४ ॥

(हे प्रभु!) ज्ञानावरणीय कर्मसे अत्यंत आच्छादित हुए भी मैंने तिर्यंचपनेमें दुःसह ठंड गरम और बारीशकी धाराके पडनेसे उत्पन्न हुआ दुःख का अनुभव किया ॥ ४४ ॥

अंतोनिक्खंतेहिं पत्तेहिं पिअकलत्तपुत्तेहिं ।
सुन्ना मणुस्सभवणाडएसु निज्झाइआ अंका ॥ ४५ ॥
[अंतर्निष्क्रान्तैः प्राप्तैः (पात्रैः) प्रियकलत्रपुत्रैः ॥
शून्या मनुष्यभवनाटकेषु निभालिता अंकाः] ॥ ४५ ॥

(हे देव!) मनुष्यभव रूप नाटकके अंदर उत्पन्न हुए मैंने गोदमें से चले गये हुए ऐसे प्रिय स्त्री पुत्रों करके अंक शून्य देखे ॥ ४५ ॥

दिट्ठा रिउरिद्धीओ आणाउ कया महिड्ढिअसुराणं ।
सहिआ य हीणदेवत्तणेसु दोगच्चसंतावा ॥ ४६ ॥
[दृष्टा रिपुऋद्धय आज्ञाः कृता महर्द्धिकसुराणाम् ॥
सोढौ च हीनदेवत्वेषु दौर्गत्यसंतापौ] ॥ ४६ ॥

देवभवमें अधम देवपनेमें उत्पन्न हुए मेने शत्रुकी संपदा देखी (उससे भला) महर्धिक देवोंकी आज्ञा मैंनें की और निःसत्वता व संताप सहन किये ॥ ४६ ॥

सिंचंतेण भववणं पल्लट्टा पल्लिआऽरहट्टुव्व ।
घडिसंठाणोस्सप्पिणिअवसप्पिणिपरिगया वहुसो ॥४७॥
[सिंचता भववनं परिवर्त्ताः प्रेरिता अरघटा इव ॥
घटीसंस्थानोत्सर्पिण्यवसर्पिणीपरिगता वहुशः] ॥४७॥

(हे प्रभु!) अरघटकी तरह भववन को सिंचते हुए मैंने घडी स्थानीय उत्सार्पिणी अवसार्पिणी संयुक्त पुद्गल परावर्त वहु वार व्यतीत किये ॥ ४७ ॥

भमिओ कालमणंतं भवंमि भीओ न नाह! दुक्खाणं ॥
संपइ तुमंमि दिट्ठे जायं च भयं पलायं च) ॥ ४८ ॥
[भ्रान्तः कालमनन्तं भवे भीतो न नाथ! दुःखेभ्यः ।
संप्रति त्वयि दृष्टे जातं च भयं पलायितं च] ॥ ४८ ॥

हे नाथ! (इस प्रकार) संसारके अंदर अनंत काल भ्रमण किया (पर उनमें) दुःखों से डरा नहीं, अब तुम्हारे दर्शन होने पर भय पैदा हुआ और वे दुःख भगगये ॥ ४८ ॥

जइवि कयत्थो जगगुरु मज्झत्थो जइवि तहवि पत्थेमि ।
दाविज्जसु अप्पाणं पुणोवि कइयावि अम्हाणं ॥४९॥

[यद्यपि कृतार्थो जगद्गुरो मध्यस्थो यद्यपि तथापि प्रार्थये।
दर्शयितात्मानं पुनरपि कदाचिद्रूपमस्माकम् ॥]

हे जगद्गुरु! यद्यपि आप कृतकृत्य हो तथा मध्यस्थ हो फिर भी मैं प्रार्थना करता हूं कि आप फिर भी हमें कभी दर्शन देना ॥ ४९ ॥

इअ झाणग्गिपलीविअकम्मिन्धण बालबुद्धिणा वि मए।
भत्तीइ थुओ भवभयसमुद्दबोहित्थबोहिफलो ॥ ५० ॥
[इति ध्यानाग्निप्रदीपितकर्मेन्धन बालबुद्धिनापि मया।
भक्त्या स्तुतो भवभयसमुद्रयानपात्रबोधिफलः ॥]

इस प्रकार ध्यानरूपी अग्नि से जिसने कर्मरूपी इन्धनको जला डाला है ऐसे हे प्रभो! जिसकी बोधि (सम्यग्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्र) संसाररूपी भयंकर समुद्रमें पार होने के लिये जहाज के समान है उसे आपकी स्तुति मुझ बाल बुद्धि ने भक्ति से की है ॥ ५० ॥

॥ संपूर्ण ॥

देवभवमें अधम देवपनेमें उत्पन्न हुए मैंने शत्रुकी संपदा देखी (उससे भला) महर्धिक देवोंकी आज्ञा मैंनें की और निःसत्वता व संताप सहन किये ॥ ४६ ॥

सिंचंतेण भववणं पल्लट्टा पल्लिआऽरहट्टुव्व ।
घडिसंठाणोस्सप्पिणिअवसप्पिणिपरिगया बहुसो ॥४७॥
[सिंचना भववनं परिवर्त्ताः प्रेरिता अरघट्टा इव ॥
घटीसंस्थानोत्सर्पिण्यवसर्पिणीपरिगता बहुशः] ॥४७॥

(हे प्रभु !) अरघटकी तरह भववन को सिंचते हुए मैंने घडी स्थानीय उत्सर्पिणी अवसर्पिणी संयुक्त पुद्गल परावर्त बहु बार व्यतीत किये ॥ ४७ ॥

भमिओ कालमणंतं भवंमि भीओ न नाह! दुक्खाणं ॥
संपइ तुमंमि दिट्ठे जायं च भयं पलायं च) ॥ ४८ ॥
[भ्रान्तः कालमनन्तं भवे भीतो न नाथ! दुःखेभ्यः ।
संप्रति त्वयि दृष्टे जातं च भयं पलायितं च] ॥ ४८ ॥

हे नाथ! (इस प्रकार) संसारके अंदर अनंत काल भ्रमण किया (पर उनमें) दुःखों से डरा नहीं, अब तुम्हारे दर्शन होने पर भय पैदा हुआ और वे दुःख भगगये ॥ ४८ ॥

जइवि कयत्थो जगगुरु मज्झत्थो जइवि तहवि पत्थेमि ।
दाविज्जसु अप्पाणं पुणोवि कइयावि अम्हाणं ॥४९॥

[यद्यपि कृतार्थो जगद्गुरो मध्यस्थो यद्यपि तथापि प्रार्थये।
दर्शयेरात्मानं पुनरपि कदाचिदप्यस्माकम् ॥]

हे जगद्गुरु! यद्यपि आप कृतकृत्य हो तथा मध्यस्थ हो फिर भी मैं प्रार्थना करता हूं कि आप फिर भी हमें कभी दर्शन देना ॥ ४९ ॥

इअ झाणग्गिपलीविअकम्मिन्धण बालबुद्धिणा वि मए ।
भत्तीइ थुओ भवभयसमुद्दबोहित्थबोहिफलो ॥ ५० ॥
[इति ध्यानाग्निप्रदीपितकर्मेन्धन बालबुद्धिनापि मया ।
भक्त्या स्तुतो भवभयसमुद्रयानपात्रबोधिफलः ॥]

इस प्रकार ध्यानरूपी अग्नि से जिसने कर्मरूपी इन्धनको जला डाला है ऐसे हे प्रभो! जिसकी बोधि (सम्यग्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्र) संसाररूपी भयंकर समुद्रसे पार होने के लिये जहाज के समान है उसे आपकी स्तुति मुझ बाल बुद्धि ने भक्ति से की है ॥ ५० ॥

॥ संपूर्ण ॥

देवभवमें अधम देवपनेमें उत्पन्न हुए मैने शत्रुकी संपदा देखी (उससे भला) महर्धिक देवोंकी आज्ञा मैंने की और निःसत्वता व संताप सहन किये ॥ ४६ ॥

सिंचंतेण भववणं पल्लट्टा पल्लिआऽरहट्टुव्व ।
घडिसंठाणोस्सप्पिणिअवसप्पिणिपरिगया बहुसो ॥४७॥
[सिंचता भववनं परिवर्त्ताः प्रेरिता अरघटा इव ॥
घटीसंस्थानोत्सर्पिण्यवसर्पिणीपरिगता बहुशः] ॥४७॥

(हे प्रभु !) अरघटकी तरह भववन को सिंचते हुए मैंने घडी स्थानीय उत्सार्पिणी अवसार्पिणी संयुक्त पुद्गल परावर्त बहु बार व्यतीत किये ॥ ४७ ॥

भमिओ कालमणंतं भवंमि भीओ न नाह! दुक्खाणं ॥
संपइ तुमंमि दिट्ठे जायं च भयं पलायं च) ॥ ४८ ॥
[भ्रान्तः कालमनन्तं भवे भीतो न नाथ! दुःखेभ्यः ।
संप्राति त्वयि दृष्टे जातं च भयं पलायितं च] ॥ ४८ ॥

हे नाथ! (इस प्रकार) संसारके अंदर अनंत काल भ्रमण किया (पर उनमें) दुःखों से डरा नहीं, अब तुम्हारे दर्शन होने पर भय पैदा हुआ और वे दुःख भगगये ॥ ४८ ॥

जइवि कयत्थो जगगुरु मज्झत्थो जइवि तहवि पत्थेमि ।
दाविज्जसु अप्पाणं पुणोवि कइयावि अम्हाणं ॥४९॥